

'देगा हुआ था ।' आग (अग्नि) पूर्ण वर्तमान का जोतन करता है । कही है कि भाषा चिन्तन का मूर्तरूप है—भारतीय चिन्तन में अग्नि मानि गना कभी भूत या भविष्य नहीं होती—यह निरन्तर वर्तमान रहती है—इसीलिये 'अग्नि' धातु का भूत या भविष्य में कोई रूप नहीं होता—'अग्नि' को आरंभ रूप में स्वीकार रूप रचना की प्रक्रिया पूरी कर दी जाती है—यह दूरी का नाम है । अभिप्राय यह कि 'इतिहास' हमारे यहाँ घटना और व्यक्ति की अपेक्षा उनका तह में विश्वमान शाश्वत मानव धर्म का होता है—तीर्थंकर इत्यादि का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

भारतीय परम्परा में 'धर्म' को व्यक्ति से जोड़ना उपायकी मदात्मता, सर्वकालिकता और सार्वभौमता पर प्रश्नवाचक चिन्तन लगाना है । अहिंसा धर्म का स्रोत है—यह अनेक रूपों में प्रवाहित होता आया है और रहेगा । मुनि नथमलजी ठीक कहते हैं कि यह अनादि है, ध्रुव है, नित्य है । यह बात दूसरी है कि सबको धारण करने वाले धर्म का आलोक जब क्षीण होने लगता है, तब कोई विशिष्ट महापुरुष उसको फिर प्रज्वलित करता है और इस प्रकार यह 'व्यक्ति' रूप से न रहकर सदातन वर्तमान 'परम्परा' का अंग बनकर उसी से एकाकार हो जाता है । इतिहास इसी 'परम्परा' का पुनराख्यान है । 'परम्परा' विचार से मनुष्य को नहीं बाँधती, विचार को मनुष्य से बाँधती है—इसीलिये यह 'परम्परा' है—परात् परम् है—पर से भी पर है—श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर है—अविच्छिन्न और निरन्तर वर्तमान है—गतिशील है—जड़ और रूढ़ि नहीं । मिलिन्द ने कहा कि बुद्ध ने प्राचीन मार्ग को ही खोला है—जो बीच में लुप्त हो गया था । गीताकार कृष्ण ने अपने धर्मोपदेश के विषय में कहा है—
 "एवम् परम्परा प्राप्तं योगं राजर्षयोः विदुः अर्थात् जिस धर्म का वे आख्यान कर रहे हैं—उसके आद्य उद्गाता वे नहीं हैं—अपितु वह 'परम्परा' से चला आ रहा है । जैन परम्परा भी मानती है कि तीर्थंकर किसी एक देश या काल में नहीं होते । वे समय समय पर आते हैं और आवृत्त होते हुए 'सत्य' का युगोपयोगी आख्यान कर जनमानस को उस ओर प्रेरित करते हैं । 'परम्परा' में एक ही 'सत्य'—जो अनन्त सम्भावनाओं से संवलिप्त है—शब्दभेद से व्यक्त होता रहता है—पर मर्मज्ञ के लिये उसमें अर्थ-भेद नहीं होता ।

आत्म-कथा

गुण और दुःग दो अवस्थाएँ हैं। गुण की अवस्था में मानव समानता का अनुभव करते हुए विनाश की ओर प्रसरता होता है। दुःग-अवस्था में वह उदास होता जाता है और अपने आपको अनन्तता की ओर जाना हुआ अनुभव करता है। सुख-दुःख का यह चक्र अनवरत रूप में चलता रहता है। इसे हम काल-चक्र की संज्ञा भी दे सकते हैं। काल-चक्र को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है — (i) उत्सर्पिणीकाल एवं (ii) अवसर्पिणी काल। इन दोनों काल-चक्रों को पुनः छः छः भागों में विभक्त किया गया है जो 'आरा' कहलाता है। उत्सर्पिणीकाल में दुःग से गुण की ओर गति बढ़ती रहती है, तब अवसर्पिणीकाल में यह गति उलटी होकर गुण से दुःग की ओर अपने कद बढ़ाती है।

काल-चक्र के इन दोनों कालों में से प्रत्येक के तीसरे और चौथे आरे २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। इस समय अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा चल रहा है। इसके पूर्व के तीसरे और चौथे आरे में चौबीस तीर्थंकरों की परंपरा उपलब्ध होती है। तीर्थंकरों की इस परम्परा के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव थे जिन्हें भगवान् आदिनाथ के रूप में भी जाना जाता है। इस परम्परा में अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर विषवर्धन भगवान् श्री महावीर हुए।

अब थोड़ा सा विचार 'तीर्थंकर' शब्द पर भी कर लेना उचित होगा। तीर्थंकर शब्द जैन शास्त्रीय और पारिभाषिक भी है। तीर्थंकर का गौ अतिविशाल और उसकी महिमा शब्दातीत है। इस शब्द की रचना तीर्थ + दो पदों के योग से हुई है। यहाँ 'तीर्थ' शब्द का अर्थ विनिष्ट एवं तर्कन रूप में ग्राह्य है। 'तीर्थ' शब्द का अर्थ संघ के रूप में लिया जाता है — जिसे 'धर्म-संघ' कहा जाता है। 'धर्म-संघ' के चार विभाग होते हैं। यथा-स साध्वी, श्रावक और श्राविका। जो इन चारों विभागों का संगठन कर इस संचालन करता है, वह चतुर्विध संघ की स्थापना करने वाला संस्थापक तीर्थंकर है।

मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के लेखन में अनेक विद्वान लेखकों के ग्रंथों का उपयोग हुआ है, उन सभी ज्ञात एवं अज्ञात विद्वान लेखकों का भी मैं आभारी हूँ।

आवरण पृष्ठ के कलाकार श्री प्रकाश आर्टिस्ट, केसरगंज, अजमेर ने जिस लगन, निष्ठा एवं स्नेह से डिजाइन बनाई है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री साकेत फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस उज्जैन के श्री माहेश्वरी बंधु एवं अन्य कार्यकर्त्ताओं को भी धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने कठिन परिश्रम करके विपन्न परिस्थितियों में पुस्तक का मूद्रण यथासमय करने में अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया।

अंत में यही निवेदन है कि जिस प्रकार मुझे इस पुस्तक में आशीर्वाद, मार्गदर्शन, सहयोग, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला, यदि इसी प्रकार भविष्य में भी मिलता रहा तो मैं साहित्य सेवा करने में पीछे नहीं रहूँगा।

पुस्तक में रही कमियों की ओर ध्यान आकर्षित कराने वाले विद्वानों का स्वागत किया जावेगा।

पुस्तक की समस्त अच्छाइयों का श्रेय परमपूज्य श्री आचार्यप्रवरश्री, उपाध्यायमुनिश्री अन्य मुनिगण तथा प्रकाशन समिति को है और पुस्तक में रही प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियों एवं अन्य कमियों के लिये मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ।

मंगलकामनाओं एवं सहयोग की अपेक्षा के साथ—

छोटा बाजार, उन्हेल
जिला उज्जैन (म०प्र०)

३० अक्टूबर १९६०

विनय निवेदक
—तेजसिंह गोड़

अपना शोध-प्रबंध भी जैन इतिहास के विषय पर ही लिखा है । समिति पूर्ण-रूपेण विश्वस्त है कि डॉ. गौड़ प्रस्तुत इतिहास की अघूरी कड़ियों को संनिकट भविष्य में ही पूरा करने में सक्षम होंगे ।

ग्रंथ की उपयोगिता का निर्णय सुयोग्य पाठक ही करेंगे और उन्हीं के निर्णय से समिति इस ग्रंथ के प्रकाशन की सफलता का मूल्यांकन कर सकेगी ।

१५१, ट्रिप्लिकेन हाई रोड
मद्रास-६००००५
दिनांक : २६ अक्टूबर १९८०

निवेदक
सुगालचंद सिंघी
मंत्री :
जयध्वज प्रकाशन समिति,

३. भगवान् श्री अर्जुन

५८

पूर्वभय ५८, जन्म एवं माता-पिता ५८, नामकरण ५८, गृहस्थावस्था ५८,
दीक्षा एवं पारणा ५८, केवलज्ञान ५८, धर्म-परिवार ५९, परिनिर्वाण ५९

४. भगवान् श्री शंभु

५३

पूर्वभय ५३, जन्म एवं माता-पिता ५३, नामकरण ५४, गृहस्थावस्था एवं
दीक्षा ५४, विद्या एवं पारणा ५४, केवलज्ञान ५५, धर्म-परिवार ५५,
परिनिर्वाण ५६.

५. भगवान् श्री अभिनन्दन

५७

पूर्वभय ५७, जन्म एवं माता-पिता ५७, नामकरण ५७, गृहस्थावस्था ५८,
दीक्षा एवं पारणा ५८, केवलज्ञान ५८, धर्म-परिवार ५८, परिनिर्वाण ६०

६. भगवान् श्री मुमति

६१

पूर्वभय ६१, जन्म एवं माता-पिता ६१, नामकरण ६२, गृहस्थावस्था ६३,
दीक्षा एवं पारणा ६४, केवलज्ञान एवं देशना ६४, धर्म-परिवार ६४, परि-
निर्वाण ६५,

७. भगवान् श्री पद्मप्रभ

६६

पूर्वभय ६६, जन्म एवं माता-पिता ६७, नामकरण ६७, गृहस्थावस्था ६७,
दीक्षा एवं पारणा ६७, केवलज्ञान एवं देशना ६८, धर्म-परिवार ६८,
परिनिर्वाण ६६.

८. भगवान् श्री सुपाश्वर्य

७०

पूर्वभय ७०, जन्म एवं माता-पिता ७०, नामकरण, ७०, गृहस्थावस्था ७१,
दीक्षा एवं पारणा ७१, केवलज्ञान एवं देशना ७१, धर्म-परिवार ७२,
परिनिर्वाण ७२,

९. भगवान् श्री चन्द्रप्रभ

७३

पूर्वभय ७३, जन्म एवं माता-पिता ७३, नामकरण ७३, गृहस्थावस्था ७४,
दीक्षा एवं पारणा ७४, केवलज्ञान एवं पारणा ७४, धर्म-परिवार ७५,
परिनिर्वाण ७५.

१०. भगवान् श्री सुविधि

७६

पूर्वभय ७६, जन्म एवं माता-पिता ७६, नामकरण ७७, गृहस्थावस्था ७७,
दीक्षा एवं पारणा ७७, केवलज्ञान ७८, धर्म-परिवार ७८, परिनिर्वाण ७८,
विशेष ७६,

१८. भगवान् श्री कुन्धु

११०

पूर्वमेव ११०, जन्म एवं माता-पिता ११०, नामकरण ११०, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद १११, दीक्षा एवं पारणा १११, केवलज्ञान ११२, धर्म-परिवार ११२, परिनिर्वाण ११३,

१९. भगवान् श्री अर

११४

पूर्वमेव ११४, जन्म एवं माता-पिता ११४, नामकरण ११५, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद ११५, दीक्षा एवं पारणा ११५, केवलज्ञान ११६, धर्म-परिवार ११६, परिनिर्वाण ११७,

२०. भगवती श्रीमल्ली

११८

पूर्वमेव ११८, जन्म एवं माता-पिता ११८, नामकरण १२०, अतीतिकर्मात्मैः श्रीमल्लि १२०, विवाह प्रसंग और प्रविशोद्य १२१, दीक्षा एवं पारणा १२३, केवलज्ञान १२४, धर्म-परिवार १२५, परिनिर्वाण १२५.

२१. भगवान् श्रीमुनिमुग्र

१२६

पूर्वमेव १२६, जन्म एवं माता-पिता १२६, नामकरण १२७, गृहस्थावस्था एवं दीक्षा एवं पारणा १२७, केवलज्ञान १२८, धर्म परिवार १२८ परिनिर्वाण १२९, विधि १२९.

२२. भगवती श्रीममि

१३०

पूर्वमेव १३०, जन्म एवं माता-पिता १३०, नामकरण १३१, गृहस्थावस्था एवं दीक्षा एवं पारणा १३१, केवलज्ञान १३२, धर्मपरिवार १३२ परिनिर्वाण १३३,

२३. भगवती श्रीप्रसिद्धि

३३

पूर्वमेव ३३, जन्म एवं माता-पिता ३३, नामकरण १३५, वध, गोप्य विधि ३३, गृहस्थावस्था एवं पारणा ३३, विवाह प्रसंग १३७, दीक्षा एवं पारणा ३३, केवलज्ञान ३६१, धर्मपरिवार ३६२, परिनिर्वाण ३६३, विधि ३६३.

१८. भगवान् श्री वृन्त् ११०
 पूर्वभय ११०, जन्म एवं माता-पिता ११०, नामकरण १११, गृहस्था-
 वस्था एवं चक्रवर्ती पद १११, दीक्षा एवं पारणा १११, केवलज्ञान ११२, धर्म-
 परिवार ११२, परिनिर्वाण ११३.
१९. भगवान् श्री अर ११४
 पूर्वभय ११४, जन्म एवं माता-पिता ११४, नामकरण ११५, पदस्थानस्था
 एवं चक्रवर्ती पद ११५, दीक्षा एवं पारणा ११५, केवलज्ञान ११६, धर्म-
 परिवार ११६, परिनिर्वाण ११७.
२०. भगवती श्रीमल्ली ११८
 पूर्वभय ११८, जन्म एवं माता-पिता ११८, नामकरण १२०, अलौकिक
 सौन्दर्य की ग्यानि १२०, विवाह प्रसंग और प्रतिबोध १२१, दीक्षा एवं
 पारणा १२३, केवलज्ञान १२४, धर्म-परिवार १२५, परिनिर्वाण १२५.
२१. भगवान् श्रीमुनिसुव्रत १२६
 पूर्वभय १२६, जन्म एवं माता-पिता १२६, नामकरण १२७, गृहस्था-
 वस्था १२७, दीक्षा एवं पारणा १२७, केवलज्ञान १२८, धर्म परिवार १२८
 परिनिर्वाण १२८, विशेष १२८.
२२. भगवान् श्रीनमि १३०
 पूर्वभय १३०, जन्म एवं माता-पिता १३०, नामकरण १३१, गृहस्था-
 वस्था १३१, दीक्षा एवं पारणा १३१, केवलज्ञान १३२, धर्मपरिवार १३२
 परिनिर्वाण १३२,
२३. भगवान् श्रीअरिष्टनेमि ३३
 पूर्वभय १३३, जन्म एवं माता-पिता १३४, नामकरण १३५, वंश, गोत्र
 एवं कुल १३५, अनुपम सौन्दर्य एवं पराक्रम १३६, विवाह प्रसंग १३७,
 वाराणसी का लौटना १३६, दीक्षा एवं पारणा १४०, केवलज्ञान १४१,
 राजीमती की दीक्षा १४२, रथनेमि की प्रतिबोध १४२, भविष्यकथन १४४
 धर्म-परिवार १४५, परिनिर्वाण, १४६, विशेष १४६.

३-	मुपमा-दुःपमा	—	दो कोड़ा कोड़ी मागरोपम
४-	दुःपमा-मुपमा	—	एक कोड़ा कोड़ी मागरोपम में ४२००० वर्ष कम
५-	दुःपमा	—	२१००० वर्ष
६-	दुःपमा-दुःपमा	—	२१००० वर्ष

उत्सर्पिणी काल का क्रम अवसर्पिणी काल में ठीक विपरीत क्रम में रहता है। यथा —

उत्सर्पिणीकाल

१-	दुःपमा-दुःपमा	—	२१००० वर्ष
२-	दुःपमा	—	२१००० वर्ष
३-	दुःपमा-मुपमा	—	एक कोड़ा कोड़ी मागरोपम में ४२००० वर्ष कम
४-	मुपमा-दुःपमा	—	दो कोड़ा कोड़ी मागरोपम
५-	मुपमा	—	तीन कोड़ा कोड़ी मागरोपम
६-	मुपमा-मुपमा	—	चार कोड़ा कोड़ी मागरोपम

इस प्रकार इन दोनों अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों का एक पूर्ण काल चक्र होता है जो क्रम से सदैव चलता ही रहता है। एक का अवमान दूसरे का प्रवर्तन करता है। इन दोनों अवस्थाओं के उपविभाजन को देखने से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि एक में मानव जीवन क्षीण होता जाता है तो दूसरे में प्रगति की ओर बढ़ते हुए विकसित होता जाता है।

उपर्युक्त दो भागों के छः उपविभागों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। यथा —

- (१) अवसर्पिणी काल के प्रथम तीन उपविभाग और उत्सर्पिणी काल के अंतिम तीन उपविभाग जिन्हें भोग-भूमि की संज्ञा दी गई।
- (२) अवसर्पिणी काल के अंतिम तीन उपविभाग और उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीन उपविभाग जिन्हें कर्म-भूमि की संज्ञा दी गई।

भोग-भूमि के अन्तर्गत जाने वाले मुपमा-मुपमादि तीन काल खण्ड इसलिए भोग-भूमि कहलाते हैं क्योंकि इन काल खण्डों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यादि प्राणियों का जीवन भोग प्रधान रहता है। इस समय प्रकृति ही स्वयं इतनी

निर्मल-शीतल-मन्द सुगन्धित वायु का सतत् प्रवाह बना रहता है। सभी प्रकार के द्रव्यों से पृथ्वी परिपूर्ण रहती है। इस समय किराँतों को भी विषय की तल्लसा नहीं रहती, चारों ओर सुख और शांति का ही साम्राज्य दिखाई देता है। इस युग (आर्य) के मानव का रंगरूप चटकीला होता है, वे सुन्दर और चित्तानर्पक होते हैं। इस समय रोग और व्याधि का नामोनिष्ठान नहीं होता है। न राजा होते हैं न जाति-पाँति के भगड़े होते हैं और न ही किसी प्रकार का कोई भेद भाव दृष्टिगोचर होता है और चींटी आदि क्षुद्र जन्तु भी नहीं होते। संतोष पूर्वक समताभाव में रहना ही इस समय के मानव का मुख्य स्वभाव होता है।

वाणिज्य, व्यापार और व्यवसाय भी इस युग में कोई आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इस युग के मानव की समस्त प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों में हो जाती है। समस्त पृथ्वी मण्डल दस प्रकार के कल्पवृक्षों में परिपूर्ण था। उस समय के निवासियों को केवल संकल्प करने मात्र से ही मनोवांछित सामग्री प्राप्त हो जाती थी। ११ कल्पवृक्षों के दस प्रकार निम्न लिखित प्रकार के हैं —



खंग, उपांग पाकर मानव युग जीवते है। तब मा पूर्ण जन्म के बाद-सुपमादि महामं का ही फल समजना चाहिए। 17

इस आरे की समाप्ति पर 'सुपमा' नामका दूसरा भाग आरम्भ होता है।

(२) सुपमा काल:-

चार करोड़ करोड़ी सागरनाम के 'सुपमा-सुपमा' आरे की समाप्ति के बाद तीन करोड़ करोड़ी सागरनाम का 'सुपमा' अर्थात् केवल सुप नामा दूसरा आरा प्रारम्भ होता है। मजपि इस आरे की स्थिति भी प्रायः प्रथम आरे की स्थिति के समान ही होती है तथापि अन्तर्गणिकाल के प्रभाव से धाने: धाने: मानव जीवन हसोन्मुत्त दुप्रा और सुप की मात्रा में कमी आई। दूसरे आरे के समस्त मनुष्यों की ऊंचाई चार हजार धनुष (चार मील) रह गई। आयु षट्कार दो पत्योपम हो गई। पृथ्वीस्थियों की संख्या १२८ रह जाती है। 12 काल के प्रभाव से जैसे जैसे इस आरे की अवधि व्यतीत होती जाती है वैसे वैसे ही इसके मुक्तों में भी कमी आती जाती है। इस आरे के फल भी इतने रसदार, मधुर और शक्तिदायक नहीं रहते जितने कि पहले आरे में होते थे। इस आरे में दो दिन बाद ही भोजन करने की इच्छा होती है। शक्ति में भी मनुष्य प्रथम आरे की तुलना में कमजोर हो जाता है। इस युग के मानव की शरीर की प्रकृति में भी परिवर्तन आया। 13

मृत्यु के छः महीने जब शेष रहते हैं, तब युगलनी एक पुत्र-पुत्री को जन्म देती है। पुत्र-पुत्री का ६४ दिन पालन किया जाता है। इसके बाद वे (पुत्र-पुत्री) दम्पती बनकर सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। मृत्यु के क्षण पर स्त्री को जंभाई और पुरुष को छोड़ जाती है। मरकर वे देवगति में जाते हैं। इनके मृतक शरीर को क्षीरसागर में डालकर मृतक संस्कार किया जाता है। इस आरे में भी ईर्ष्या नहीं, वैर नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, क्रूरुप नहीं, परिपूर्ण अंग, उपांग, पाकर सुखोपभोग करते हैं। पृथ्वी का स्वाद षाकर जैसा रह जाता है। 14

१. जैनागम स्तोक संग्रह, पृ० १४५-४६

२. तिलोय, ४।३६६-६७

३. भगवान महावीर का आवर्श जीवन पृ० १२

४. जैनागम स्तोक संग्रह, पृ० १४७

१० : जैनधर्म का संक्षिप्त इतिहास

उम आरे में कल्पवृक्ष कहीं भी नहीं दिखाई देते हैं। इस युग के मनुष्य भ्रम में मर्दव जस्त रहते हैं। वे प्रतिदिन खाते हैं किन्तु पुनः पुनः उन्हें भोजन की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस युग का मानव श्रमजीवी हो जाता है। भोजन अब साधारण पद्यों का रह जाता है। दुःख, रोग, शोक, संताप, भय, मोह, लोभ आदि में पूर्णपिशा अगिक वृद्धि हो जाती है। लोगों में भय और लोभी विषे पापकर्म करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। विभिन्न प्रकार की कथाओं और विद्याओं की जाँच भी इसी युग में होती है। दाव देने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हो जाती है। स्वर्ग-नरक की भावना भी लोगों के मन में लम्बी समय बसती होती है। भगवान् पापभक्षण को छोड़कर शेष सभी देवताओं की पूजा भी आरे में हुए। ११

(१२) ७ वगैरा वगैरा :

२. भगवान् श्री ऋषभदेव (चिह्न-वृषभ)

जब किसी महापुरुष के वर्तमान का मूल्यांकन करना होता है तो उसके पूर्व यह आवश्यक होता है कि उसके भूतकाल पर भी दृष्टि डाली जावे। इस दृष्टि से यदि हम भगवान् श्री ऋषभदेव के जीवन का मूल्यांकन करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी पृष्ठभूमि पर भी विचार करें क्योंकि भगवान् श्री ऋषभदेव किसी एक जन्म की देन न होकर जन्म जन्मांतरों की साधना का प्रतिफल है। उनके पूर्वभव उनके क्रमिक विकास का ही प्रतिफल है। जैन ग्रंथों में भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्वभवों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

श्वेताम्बर ग्रंथ आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, त्रिपट्टि शलाका पुरुष चरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओं में भगवान् श्री ऋषभदेव के तेरह भवों का विवरण मिलता है और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने महापुराण में तथा आचार्य दामनंदी ने पुराणसार संग्रह में दस भवों का ही उल्लेख किया है। भगवान् श्री ऋषभदेव के तेरह भवों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

तेरह भवों के प्रथम भव में भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव धन्ना सार्थवाह बना जिसने अत्यन्त उदारता के साथ मुनियों को धृतदान दिया और फलस्वरूप उसे सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई। दूसरे भव में उत्तर कुरु भोग भूमि में मानव बने और तृतीय भवमें सौधमं देव लोक में उत्पन्न हुए। चतुर्थ भव में महाबल और इसी भव में श्रमण-धर्म भी स्वीकार किया। पांचवें भव में ललितांगदेव, छठे भव में वज्रजंघ, सातवें भव में उत्तर कुरु भोग भूमि में युगलिया, आठवें भव में गौधर्मकल्प में देव हुए। नववें भव में जीवानन्द नामक वैद्य हुए। इस भव में अपने स्नेहों साधियों के साथ कृमि-कुष्ठ रोग से ग्रस्त मुनि की चिकित्सा कर मुनि को पूर्ण स्वस्थ किया। मुनि के तात्त्विक प्रवचन-पीयूष का पान कर अपने साधियों सहित दीक्षा अंगीकार की और उत्कृष्ट संयम की साधना की। दशवें भव में यह जीव बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। ग्यारहवें भव में

२० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

होने लगे । आयु भी क्रमशः घटता हुआ तीन पत्य के स्थान पर दो पत्य और एक पत्य का हो गया । शरीर का परिमाण भी घटने लगा किन्तु भोजन की मात्रा पहले से अधिक हो गई । भूमि की स्निग्धता और मधुरता में पर्याप्त अन्तर आया । आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से मानव जीवन अस्त-व्यस्त हो गया । १

शासन-व्यवस्था :

कुलकरों की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूर्व में संकेत किया जा चुका है । कुल की व्यवस्था व संचालन करने वाला सर्वे-सर्वा जो पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न होता था उसे 'कुलकर' कहा गया है । १२ कुलकर को व्यवस्था बनाये रखने के लिये अपराधी को दण्डित करने का भी अधिकार था ।

कुलकर विमलवाहन शासक के सद्भाव में कुछ समय तक अपराधों में न्यूनता रही, पर कल्पवृक्षों के क्षीणप्राय होने से युगलों का उन पर भ्रमत्व बढ़ने लगा । एक युगलिया जिस कल्पवृक्ष का आश्रय लेता था उसी का आश्रय अन्य युगल भी ले लेता था इससे कालह व वैमनस्य की भावनाएँ तीव्रतर होने लगी । वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए नीतिज्ञ कुलकर विमल-वाहन ने कल्पवृक्षों का विभाजन कर दिया । १३

दण्डनीति :

आवश्यकता आविष्कार की जननी है, कहावत के अनुसार जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगी । जन-जीवन त्रस्त हो उठा, तब अपराधी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करने के लिये उपाय खोजे जाने लगे और उसी के परिणामस्वरूप दण्डनीति का प्रादुर्भाव हुआ । १४ कहना अनुचित न होगा कि इससे पूर्व किसी प्रकार की कोई दण्डनीति नहीं थी क्योंकि उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं

१. श्रुत्यसंदेह : एक परिशीलन द्वि० सं० पृ० ११६-११७

२. स्थानांग सूत्र वृत्ति, ७६७।५१०।१

३. श्रुत्यसंदेह : एक परिशीलन, पृ० १२१

४. दण्ड : अपराधिनामनुशासनस्तत्र तस्य वा स एव वा नीतिः नयो दण्डनीति ।

स्थानांगवृत्ति-प० ३६८-१

जागृत-काल ॥

कुत्तरों की व्यवस्था के सम्बन्ध में पहले प्रयोग किया जा चुका है। कुत्तरों की व्यवस्था में संकट का उदय होता सर्व प्रथम जो पूर्ण परिणाम सम्पन्न होता था उसे 'दण्डक' कहा गया है। १२ कुत्तरों की व्यवस्था बनाने करने के लिए व्यवस्था को दण्डक करने का भी उपाय था।

कुत्तर विभाजन जागत के संभाव में कुछ समय तक अपराधी में न्यूनता रही, पर कल्पवृक्षों के शीघ्रप्राय होने में युवकों का उदय पर समत्व बढ़ने लगा। एक युगविद्या जिस कल्पवृक्ष का आश्रय लेता था उसी का आश्रय अन्य युगन भी ले लेता था उससे कदाह य वैमल्य्य की भावनामें तीव्रतर होने लगी। वर्तमान स्थिति का विहायलोकन करने हुए नीतिज्ञ कुत्तर विमल-वाहन ने कल्पवृक्षों का विभाजन कर दिया। १३

दण्डनीति :

आवश्यकता आविष्कार की जननी है, कदाचित के अनुसार जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगी। जन-जीवन प्रस्ता हो उठा, तब अपराधी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करने के लिये उपाय खोजे जाने लगे और उसी के परिणामस्वरूप दण्डनीति का प्रादुर्भाव हुआ। १४ कहना अनुचित न होगा कि इससे पूर्व किसी प्रकार की कोई दण्डनीति नहीं थी क्योंकि उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं

१. ऋषभदेव : एक परिशीलन द्वि० सं० पृ० ११६-११७

२. स्वानांग सूत्र वृत्ति, ७६७।५१०।१

३. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ० १२१

४. दण्ड : अपराधिनामनुशासनस्तत्र तस्य वा स एष वा नीतिः नयो दण्डनीति।
स्वानांगवृत्ति-प० ३६६-१

धिवकार नीति :

समाज में अभाव बढ़ता जा रहा था । उसके साथ ही अगंतोप भी बढ़ रहा था जिसके परिणामस्वरूप उच्छृंखलता और भुटना का भी एक प्रकार में विकास ही हो रहा था । ऐसी स्थिति में हाकार और माकार नीति में कब तक व्यवस्था चल सकती थी । एक दिन माकार नीति भी विफल होती दिखाई देने लगी और अब उसके स्थान पर किसी नई नीति की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । तब माकार नीति की असफलता से 'धिवकार नीति' का जन्म हुआ । यह नीति कुलकर प्रेमनजित से लेकर अंतिम कुलकर नाभि तक चलती रही । इस धिवकार नीति के अनुसार अपराधी को क्षाना कहा जाता था— 'धिक् अर्थात् तुम्हें धिवकार है, जो ऐसा कार्य किया ।'

इस प्रकार यदि अपराधों के मान में वर्गीकरण किया जाये तो वह निम्नानुसार होगा—

जघन्य अपराध वालों के लिये 'मिद'

मध्यम अपराध वालों के लिये 'निपेध' और

उत्कृष्ट अपराध वालों के लिये 'तिरस्कार' सूचक दण्ड

मृत्यु दण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे । 2

कुलकर नाभि तक अपराधवृत्ति का कोई विशेष विकास नहीं हुआ था क्योंकि उस युग का मानव स्वभाव से सरल और हृदय से कोमल था । 3

कुलकर नाभिराय :

अन्य कुलकरों से नाभिराय अधिक प्रतिभा सम्पन्न थे । समुन्नत शरीर, अप्रतिम रूप-सौंदर्य अपार बल वैभव के कारण वे सभी में अप्रतिम थे ।...उनका युग एक संक्रांतिकाल था । भोग भूमि समाप्त होकर कर्मभूमि का प्रारंभ हो चुका था । नये प्रश्न थे, नये हल चाहिये थे । नाभिराय ने उनका समाधान

1. स्थानांगवृत्ति प० ३६६-धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं उच्चारण धिवकारः ।
2. ऋषभदेवः एक परिशीलन, पृ० १२३
3. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, यशस्कार- मू० १४

यहाँ यह स्मरणीय है कि अन्त में तीर्थंकरों की माताएँ प्रथम स्वप्न में गजराज की मुद्रा में प्रवेश करती हुई देवती हैं, परन्तु ऋषभदेव की माता मरुदेवी ने प्रथम स्वप्न में वृषभ को अपने मुद्रा में प्रवेश करने देगा।

स्वप्न दर्शन के पश्चात् जाग्रत हो माता मरुदेवी नाभि कुम्भकर के पास आई और अलौकिक स्वप्नों का फल पूछा। नाभिराजा ने अपनी तीक्ष्ण विचार शक्ति से स्वप्नों का प्रतिफल बताते हुए कहा— 'तुम एक अलौकिक पुत्र-रत्न को प्राप्त करोगी।' १

जन्म :

ष्वेताम्बर ग्रंथों (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र, आनन्दकनिर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, त्रिपट्टि-शलाका पुरुष चरित्र आदि) के अनुसार सुखपूर्वक गर्भकाल पूर्ण कर चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ और दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन के अनुसार जन्मतिथि नवमी है। १२ यह सम्भव है कि उदयास्त तिथि की मान्यता की दृष्टि से ऐसा तिथि भेद लिखा गया हो। इसके अतिरिक्त तो और कोई दूसरा कारण दिखाना नहीं देता है।

जिस समय भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ, सभी दिशाएँ जांत थीं। प्रभु के जन्म से सम्पूर्ण लोक में उद्योत हो गया। क्षणिक के लिये नारक भूमि के जीवों को भी विश्रान्ति प्राप्त हुई। छप्पन दिक्-कुमारियों और देव देवेन्द्रों ने आकर जन्म महोत्सव मनाया। १३ जन्माभिषेक की विशेष जानकारी के लिये जम्बू-द्वीप प्रज्ञप्ति, आवश्यक चूर्णि, चउप्पन्न महापुरिस चरियं, एवं त्रिपट्टि शलाका पुरुष चरित्र दृष्टव्य है।

नामकरण :

भगवान् ऋषभदेव का जीव जैसे ही माता मरुदेवी के गर्भ में आया था, वैसे ही माता मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे थे। उनमें सबसे पहले 'वृषभ' का स्वप्न था और जन्मोपरांत बालक के उक्त स्थल पर 'वृषभ' का शुभ चिन्ह

१. ऋषभदेव : एक परि०, पृ० १२६, त्रिपट्टि १।२।२२६, आव० नू० पृ० १३५
२. महापुराण - १३।१-३ पृ० २८३
३. जैन धर्म का मौलिक इति०, भा० १ पृ० १४

वंश और गोत्र :

उस समय का मानव समाज किसी कुल, जाति अथवा वंश में विभक्त नहीं था। इसलिये श्री ऋषभदेव की कोई जाति या वंश नहीं था। जिस समय श्री ऋषभदेव की आयु एक वर्ष से कुछ कम थी, वे अपने पिता की गोद में बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे, तब इन्द्र अपने हाथ में इक्षुदण्ड (गन्ना) लेकर उपस्थित हुए। श्री ऋषभदेव ने इन्द्र के अभिप्राय को समझकर इक्षुदण्ड लेने के लिये अपना प्रसास्त लक्षण युक्त दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। उस पर इन्द्र ने इक्षु भक्षण की रीति देखकर उनके वंश का नाम इक्ष्वाकु वंश रखा।¹¹ इनकी जन्मभूमि भी तभी से इक्ष्वाकु भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुई।¹² और गोत्र काश्यप कहा गया।¹³

अकाल मृत्यु :

श्री ऋषभदेव का बाल्यकाल अति आनंद से व्यतीत हुआ। शनैः शनैः वे दस वर्ष के हुए तभी एक अपूर्व घटना घटी। एक युगल अपने नवजात पुत्र पुत्री को ताड़वृक्ष के नीचे गुलाकर स्वयं क्रीड़ा हेतु प्रस्थान कर गया। भवितव्यता से एक बड़ा परिपक्व ताड़फल बालक के ऊपर गिरा, मर्म-प्रदेश पर प्रहार होने से असमय ही वह बालक मरकर स्वर्ग सिंघार गया। यह प्रथम अकाल मृत्यु उस अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे में हुई।¹⁴ यौगलिक माता-पिता ने बड़े लाड़ से अपनी इकलौती कन्या का पालन किया, अत्यन्त सुन्दर होने से उसका नाम भी 'गुनन्दा' रख दिया गया। कुछ समय पश्चात् उसके माता-पिता की भी मृत्यु हो गई। इस कारण यह बालिक पथभ्रष्ट मृगी की भांति इधर उधर परिभ्रमण करने लगी। अन्य यौगलिकों ने नाभिराजा से उक्त गमस्त वृत्तांत कह गुनाया। श्री नाभि ने उम लड़की के विषय में यह कह कर कि यह ऋषभ की पत्नी बनेगी, अपने पास रख लिया।¹⁴

१. आच० निर्युक्ति गा० १८६

२. आच० चूर्णि - पृ० १५२

३. आच० मन्० पूर्वभाग पृ० १६२

४. इस अकाल मृत्यु की घटना को जैनधर्म में आश्चर्यजनक माना गया है, क्योंकि भोग भूमि के मनुष्य परिपूर्ण आयु भोग कर ही मरते हैं।

५. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ० १३३-३४

भारत और बाहुवल्की का विवाह :

योगलिक युग में भारत और बहज का सामान्य एक सामान्य विवाह था । बाज जिसे अस्वन्त देव न थीनीतिमूलक समझा जाता है उस समय तक एक प्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य प्रथा थी । भगवान् श्री ऋषभदेव ने मुन्दरी के माघ पाणिप्रदण कर इस प्रथा का उन्नेद दिया तथा कालांतर में इसे और सुदृढ़ रूप देने के लिये न योगलिक युग का मूलतः नाश करने के लिये जब भारत और बाहुवल्की युवा हुए तब भारत महजान ब्राह्मी का पाणिप्रदण बाहुवल्की से करवाया और बाहुवल्की महजान मुन्दरी का पाणिप्रदण भारत से करवाया । इन विवाहों का अनुकरण करने जनता में भी भिन्न मोन में उत्पन्न कन्याओं को उनके माता-पिता आदि अभिभावकों द्वारा दान में प्राप्त कर पाणिप्रदण करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार एक नवीन परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ । 12

राज्याभिषेक :

अंतिम कुलकर नाभि के समय में ही जब उनके द्वारा अपराध निरोध के लिये निर्धारित की गई धिक्कार नीति का उल्लंघन होने लगा और अपराध निवारण में उनकी नीति प्रभावहीन सिद्ध हुई, तब युगलिक लोग घबराकर ऋषभदेव के पास आए और उन्हें वस्तुस्थिति का परिचय कराते हुए सहयोग की प्रार्थना की ।

ऋषभदेव ने कहा—'जनता में अपराधी मनोवृत्ति नहीं फैले और मर्यादा का यथोचित पालन हो इसके लिये दण्ड व्यवस्था होती है, जिसका संचालन

१. ऋषभदेव : एक परि०, पृ० ३५-३६

२. ऋषभदेव : एक परिशीलन पृष्ठ १३६-१३७.

अपराधी के समय में निम्न प्रकार के दण्ड देना : अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना ।

दण्ड अंशों के समय में निम्न प्रकार के दण्ड देना : अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना । अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना । अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना । अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना । अपराधी के अंशों के समय में दण्ड देना ।

दण्डनीति :

सामान की सुरक्षा के लिए दण्ड परम प्राथमिक है । दण्डनीति में अनीति भाषी भाषी को नष्ट में करने के लिए विचारित किया है । अपराधी को उचित दण्ड न दिया जाय तो अपराधों की संख्या निरन्तर बढ़ती जायगी एवं सुरक्षाओं में राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकेगी । अतः श्री जयप्रकाश ने अपने समय में चार प्रकार की दण्ड-व्यवस्था बनाई । (१) परिभाष, (२) मण्डल बन्ध, (३) चारक, (४) छविच्छेद ।

परिभाष :

कुछ समय के लिए अपराधी व्यक्ति को आक्रोश पूर्ण जठरों में नजरबन्द रहने का दण्ड ।

मण्डल बन्ध :

सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड देना ।

चारक :

बन्दीगृह में बन्द करने का दण्ड देना ।

छविच्छेद :

करादि अंगोपांगों से छेदन का दण्ड देना ।

१. त्रिपट्टि० १।२।९७४-६७६, आय० निघुं० गा० १६८

२. वही, १।२।६२५-६३२

३. वही, १।२।९५६

हो सकती, अतः जब काल की स्निग्धता कुछ कम हुई तब उन्होंने लकड़ियों को घिसकर अग्नि उत्पन्न की और लोगों को पाक-कला का ज्ञान कराया ।

चूर्णिकार ने लिखा है कि संयोगवशा एक दिन जंगल के वृक्षों में अनायास संघर्ष हुआ और उससे अग्नि उत्पन्न हो गई । वह भूमि पर गिरे सूखे पत्ते और घास को जलाने लगी । युगलियों ने उसे रत्न समझकर ग्रहण करना चाहा किन्तु उसको दूते ही जब हाथ जलने लगे तो वे अंगारों को छोड़कर ऋषभदेव के पास आये और सारा वृक्षांत कह सुनाया । श्री ऋषभदेव ने कहा— 'आसपास की घास साफ करने से आग आगे नहीं बढ़ सकेगी ।' उन लोगों ने वैसा ही किया और आग का बढ़ना बन्द हो गया ।

फिर भगवान् ऋषभदेव ने बताया कि इसी आग में कच्चे धान्य को पकाकर खाया जा सकता है । युगलियों ने आग में धान्य को डाला तो वह जल गया । इस पर युगलिक समुदाय पुनः श्री ऋषभदेव के पास आया और बोला कि आग तो स्वयं ही सारा धान्य खा जाती है । तब भगवान् ने मिट्टी गीली कर हाथों के कुंभ स्थल पर उसे जमाकर पात्र बनाया और बोले कि ऐसे बर्तन बनाकर धान्य को उन बर्तनों में रखकर आग पर पकाने से वह जलेगा नहीं । इस प्रकार वे लोग आग में पकाकर खाद्य तैयार करने लगे । मिट्टी के बर्तन और भोजन पकाने की कला सिखाकर ऋषभदेव ने उन लोगों की समस्या हल की इसलिये लोग उन्हें विधाता एवं प्रजापति कहने लगे । सब लोग शांति में जीवन व्यतीत करने लगे । १

लोक-व्यवस्था :

इस जिन्य के अनन्तर अन्य जिल्यों के लिये भी द्वार खुल गया । ग्रामों व नगरों का निर्माण करने के लिये उन्होंने मकान बनाने की कला सिखाई ।

कार्य करने करने मनुष्यों का मन उचट जाय तो मनोरंजन के लिये विम-जिन्य आदि का भी आविष्कार किया । कल्पवृक्षों के अभाव में वस्त्र की समस्या सामने उपस्थित हुई तो भगवान् ने वस्त्र निर्माण की शिक्षा दी । बन्ध, दाग्न आदि की अविबृद्धि में जब शरीर उभट्ट व अशोभन दिखाने दिया तो भगवान् ने नापितजिन्य का प्रतिपादन दिया ।

दान :

संसार त्याग की भावना से अग्निनिष्क्रमण से पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रति-दिन प्रभात की पुण्यवेला में एक वर्ष तक एक करोड़ आठ लाख मुद्राएँ दान दीं। इस प्रकार एक वर्ष की अवधि में श्री ऋषभदेव द्वारा तीन अरब अठ्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया गया। दान देकर आपने जन-जन के मानस में यह भावना भर दी कि धन के योग का महत्व नहीं है, वरन् उसके त्याग का महत्व है।

महाभिनिष्क्रमण :

भारतीय इतिहास में चैत्र कृष्णा अष्टमी का दिन ३ सदैव स्मरणीय रहेगा। जिस दिन सम्राट श्री ऋषभदेव राज्य वैभव को ठुकराकर, भोग-विलास को तिलांजलि देकर, परमात्मा-तत्त्व को जाग्रत करने के लिये 'मर्त्यं सावज्जंजोमं पच्चकरवामि' सभी पाप-प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ, इस मध्य भावना के साथ विनीता नगरी से निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, भ्रमणक वृक्ष के नीचे उत्तरापारु नक्षत्र में चतुर्थ प्रहर के समय, पण्ड भक्त के तप से युक्त होकर संयंप्रथम परिव्राट् बने। शीपंस्य वालों की तरह पापों का भी जड़ मूल में परित्याग करना है। अतः उन्होंने सिर के बालों का चतुर्मुष्टिका मुन्चन किया। उस समय भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उपवंश, भोग-वंश, राजन्य वंश और क्षत्रिय वंश के चार हजार साधियों ने भी उनके साथ ही संयम श्रंगीकार किया। ४ यद्यपि भगवान् श्री ऋषभदेव ने उन चार हजार साधियों को प्रदग्ग्या प्रदान नहीं की, लेकिन उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही मुन्चन आदि क्रियाएँ कीं। ५

साधुचर्या :

दीक्षा श्रंगीकार करने के पश्चात् भगवान् परिवार, सहित, गमाज व देश के कर्त्तव्यों में बहूत उत्तर उठ गये थे। उन्होंने अपने स्वत्व को अग्निव विषय

१. श्राव० निर्यु० गा० २३६, त्रिषष्टि० १।३।२३.

२. त्रिषष्टि० १।३।२४

३. श्राव० निर्यु० वि०, गा० ३३६

४. जम्बू० प्र० क्षमोलक० ३६।००-६१

५. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ० १६०-६१

माता सरदेयी की मुक्ति

माता सरदेयी अपने पतनान्तरण के पूर्व में के. वि. वि. विद्यालय में प्राध्यापिका थीं। उनके अपने अर्थ के अभाव में वे अपने अर्थ के कठोरता से जीवित का समानान्तर मुक्त हो अपने सुख, विविध शक्ति में भी पूर्णता का गर्व। अपने विद्यार्थियों की देखभाल के लिये वे कार्य करती थीं। अर्थ के अभाव में वे भी जीवन में ही जीवित करने लगीं। माता ने देखा कि अशोक वृक्ष के नीचे विद्यालयवासी प्रत्येक दिन के भी चरणों में अमंथ्य देवी-देवता नमन कर रहे हैं, - पूजा प्रार्थना कर रहे हैं और प्रभु देवता देख रहे हैं। यह मन देखकर माता भी विचलित हो गईं। वास्तव्य भावना में परिवर्तित हो गया। विद्यालय माता सरदेयी नमन प्रकृत ध्यान में लीन होकर सिद्ध मुक्त हो गईं। कर्मों का आकर्षण हट गया और वह मुक्त हो गयीं। दुर्लभ विनिर्माण पद की, उपलब्धि उभे महान ही हो गई। स्वयं भगवान् श्री ऋषभदेव ने योगनाम की कि इस युग की सर्वप्रथम मुक्ति गामिनी सरदेयी सिद्ध भगवती हो गयी है।

देशना एवं तीर्थ स्थापना :

केवल शानी और धीतरागी बन जाने के उपरांत भगवान् श्री ऋषभदेव पूर्ण कृत कृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकांत साधना से भी अपनी मुक्ति कर लेते फिर भी उन्होंने देशना दी। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि जब तक देशना देकर धर्म तीर्थ की स्थापना नहीं की जाती तब तक तीर्थकर नाम कर्म का भोग नहीं होता। दूसरा जैसा कि प्रथम व्याकरण सूत्र में कहा

१. यही० २४।८।५७३

२. विस्तृत विवरण के लिये देखें :

(१) आचम्यक पूर्णि पृ० १८२

(२) आचम्यक मल० पृ० २२९

(३) त्रिपष्टि०, ११३।५२८-५३०-५३५

(४) ऋषभदेव : एक परि० पृ० १७६-७७

(५) जैन धर्म का मौ० इति० प्र० भा. पृ० ३६-४१

मरीचि : प्रथम परिव्राजक :

सम्राट् भरत के पुत्र मरीचि ने भगवान् की देवता में प्रभावित होकर भगवान् के श्रीचरणों में ही जीना कष्ट कर ही और सीमित होकर साधना प्रारम्भ की। साधना का मार्ग जिाना कठिन है और उग्र मार्ग में जाने वाली परीपह-बाधाएँ जितनी कठोर होती हैं उतनी ही कोमल कुमार मरीचि काया थी। फलतः उन भीषण व्यतों और प्रचण्ड उपमर्ग-परीपहों को वह भेग नहीं पाया तथा कठोर साधना की पगछेंनी में ज्युत हो गया। उसके समक्ष समस्या आ पड़ी हुई - न तो वह उस संयम का निर्वाह कर पा रहा था और न ही पुनः गृहस्थ मार्ग पर आसक्त हो पा रहा था। वह समस्या का निदान खोजने लगा और अपनी स्थिति के अनुरूप उसने एक नवीन वीतराग स्थिति की मर्यादाओं की कल्पना की। श्रमण धर्म से उसने सम्भाव्य विन्दुओं का चयन किया और उनका निर्वाह करते हुए वैराग्य के एक नवीन देश में विचरण करने का निश्चय किया। उसका यह नवीन रूप "परिव्राजक देश" के रूप में प्रकट हुआ। यहीं से परिव्राजक धर्म की स्थापना हुई जिसका उन्नायक मरीचि था और वहीं प्रथम परिव्राजक था। परिव्राजक मरीचि वाद में भगवान् के साथ विचरण करता रहा। मरीचि ने अनेक जिज्ञासुओं को दशविधि श्रमण धर्म की शिक्षा दी और भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार करने को प्रेरित किया। सम्राट् भरत के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा था कि इस सभा में एक व्यक्ति ऐसा भी है जो मेरे वाद चलने वाली चौबीस तीर्थकारों की परम्परा में अंतिम तीर्थकर बनेगा और वह है मरीचि। अपने पुत्र के उत्कर्ष से अवगत

१. कल्पसता, २०७, कल्पद्रुमसवलिका, १५१

२. ऋषभदेव : एक परि० पृ० १८०

आकाश में चला आकर वाहवाली ने गूँज करने में लागू। पृथ्वी को भी चिन्ता तक न लाई। वाहवाली की आवाज श्रापी वाम की। वामाक्ष गूँज के कारण में था कम। दो-तीनों गूँज बारा। सब किन्तु श्रापी की। सब निर्णय नहीं हो सका। अतः वाहवाली ने मुखान पर यह निर्णय लिया गया कि श्रापी राम-लाल करने के स्थान पर दो-तीनी निर्णय गूँज का निर्णय करे। यह एक श्रापी गूँज, बाह्यगूँज, बाह्यगूँज, आंतरगूँज, और श्रापीगूँज हुए। इस सभी में वाहवाली की ही निर्णय हुई। इसमें भारत ने आधीय म पाकर श्रापी गूँज पर वाहवाली के निर्णयको बल करने के विषय चक्र का प्रयोग किया। इस पर वाहवाली अचरित कोचित हो उठी। उन्हापर वाहवाली ने श्रापी को पकड़ना चाहा किन्तु श्रापी वाहवाली के आगवाय प्ररक्षण कर गूँजः भारत के वाम वाम मीट गया। इस वृक्षपर सभी उपस्थित जन आगवायचक्रित रह गये। वाहवाली की प्रवृत्ता में गगनमण्डल गूँज उठा। भारत को अपने श्रापी पर लज्जित होता पड़ा। 14

वाहवाली ने क्रुद्ध होकर भारत पर प्रहार करने के विषय श्रापी प्रबल मुट्ठी उठाई। इसे देखकर आवाज गूँज उठी—“सम्राट भारत ने भूल की है, किन्तु आप भूल न करें। छोटे भाई के द्वारा ज्येष्ठ स्राता की हत्या अनुचित

१. त्रिपट्टि० ११५, १४-६७,
२. आवश्यक सूत्रि, पृ० २१०
३. त्रिपट्टि०, पर्व १ सर्ग ५
४. वही, ११५, ७२२-७२३
५. वही, ११५, ७४६

भरत को केवल ज्ञान प्राप्त एवं निर्वाण :

सम्राट् भरत के एक दूत साम्राज्य का मन्त्रीय होकर भी सम्राट् भरत के मन में न तो वैभव के प्रति भागिना का भाव था और न ही अभिमानों के लिये विष्या का। मुद्रासन के कारण ने उनके मोक्षार्थ हो गये थे कि उन्हीं के नाम को आधार मानकर उस देश को मारुतनगं कहा जाने लगा। मुद्रासनात् तब वे शासन करते रहे, किन्तु साधित्वात् की कामना में ही, अन्यथा अधि-कार, सत्ता, ऐश्वर्य आदि के भाग की कामना तो उनमें रचनाय भी नहीं थी।

भगवान् श्री ऋषभदेव विचरन्तु करते करते एक समय राजधानी विनीता नगरी में पधारे यहाँ भगवान् से किमी जिज्ञासु द्वारा एक प्रश्न पूछा गया जिसके उत्तर में भगवान् ने यह व्यक्त किया कि नरकवर्ती सम्राट् भरत इसी भव में मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। भगवान् की वाणी अक्षरशः सत्य घटित हुई। इसका कारण यही था कि साम्राज्य के भोगोपभोगों में वे मात्र तन मे ही संलग्न थे, मन मे तो वे सर्वथा निरलिप्त थे। सम्पद्-दर्शन के आलोक से उनका चित्त जगमग करता रहता था। उन्हें अंततः केवल ज्ञान, केवल दर्शन उपलब्ध हो गया। कालान्तर में उन्हें निर्वाण पद की प्राप्ति हो गई और वे सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये। ११

धर्म-परिवार :

जिस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का गृहस्थ परिवार विनाश था, उसी प्रकार उनका धर्म-परिवार भी अति-विनाश था। भगवान् के पावन प्रवचनों को सुनकर चौरासी हजार श्रमण बने और तीन लाख श्रमणियां बनीं। तीन लाख श्रावक और पांच लाख चौपनहजार श्राविकाएँ हुईं। १२

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्व० पृ० ११ विस्तार के लिये देखें:-

- (१) जैनधर्म और दर्शन-मुनिनयमन (२) जैन दर्शन के भौतिक तत्व
 (३) आवश्यक नियुक्ति गा० ४३६, (४) लाव० चूणि पृ० २२७
 (५) ऋषभदेव . एक परिशीलन.

२. कल्पसूत्र-१६७-५८

३. भगवान् श्री अजित (चिह्न हाथी)

प्रथम तीर्थंकर, मानव सम्यता के आद्य प्रवर्तक भगवान् श्री ऋषभदेव के सुदीर्घकाल पश्चात् इस घरातल पर द्वितीय तीर्थंकर के रूप में भगवान् श्री अजित का अवतरण हुआ ।

पूर्वभव :

महाराज विमलवाहन के जीवन में उन्होंने बड़ी साधना और जिन प्रवचन की भक्ति की थी । संसार में रहते हुए भी इनका जीवन भोगों से अलिप्त था । विशाल राज्य और भव्य भोगों को पाकर भी उस ओर इनकी प्रीति नहीं हुई । लोग इनको युद्धवीर, दानवीर और दयावीर कहा करते थे ।

इनका मन निरन्तर इस बात के लिये चिंतित रहता था कि — “मनुष्य जन्म पाकर हमने क्या किया ? बचपन से लेकर आज तक न जाने कितनों को सताया, कितनों को डराया और कितनों को निराश किया, जिसकी कोई सीमा नहीं । तन, धन और सम्मान के लिये हजारों कष्ट सहते रहे । पर अपने आपको ऊंचा उठाने का कभी विचार नहीं किया । क्या जीवन की सफलता यही है ?”

राजा के इस प्रकार के चिंतन को तब और बल मिला जब अरिदम आचार्य के नगर के उद्यान में आने की शुभ सूचना वन पालक ने उनको दी । बड़े उत्साह और प्रेम के साथ राजा आचार्य को वन्दन करने गया और आचार्य के त्यागपूर्ण जीवन के दर्शन कर परम प्रसन्न हुआ । उसके अन्तर्मान की सारी वासनाएँ शांत हो गयी । आचार्य के त्याग और वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर राजा विरक्त हुआ और पुत्र को राज्य सौंपकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ।

वह साधु बन गये । पांच समिति, तीत गुप्ति की साधना करते हुए उन्होंने विविध प्रकार के तप, अनुष्ठान आदि किए और एकावली, रत्नावली, लघुसिंह

५० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

आपका विवाह हुआ। लेकिन आप अल्पमत भाग में मत गणितिक व्यवहार को चलाते रहे।

मोक्ष-साधन की इच्छा प्रकट करते हुए एक दिन राजा जितशत्रु ने अजित से राज्य ग्रहण करने के लिये कहा। आपने मुझसे दिया कि राज्य का भार चाचा सुमित्र को सौंप दिया जावे। किन्तु उन्होंने भी इसे स्वीकार नहीं किया। तब आपको ही राज्य भार का संचालन अपने हाथों में लेना पड़ा। आपके शासनकाल में प्रजा सुख-समृद्धि और शांति का अनुभव करने लगी। इस अवधि में महाराज अजित अपने कर्तव्य के प्रति गतिशील बने रहे थे। अधिकांश पक्ष के प्रति वे पूर्णरूप से उदासीन थे। अंततः आपने राज्य का भार सुमित्र के पुत्र सगर को सौंपकर दीक्षित होने का संकल्प कर लिया। सगर आगे चलकर दूसरा चक्रवर्ती बना।

दीक्षा एवं पारणा :

श्री अजित के विरक्त भाव को जानकर लोकान्तिक देव आये और उन्होंने प्रभु से धर्मतीर्थ के प्रवर्तन की प्रार्थना की। प्रभु ने भी एक वर्ष तक दान देकर माघ शुक्ल नवमी को दीक्षा की तैयारी की। हजारों स्त्री-पुरुषों के बीच जब आप सहस्राश्रयन में पालकी से नीचे उतरे तब जयनाट से गगन गण्डल गूँज उठा। १२

भगवान् श्री अजित ने पंचमुष्टिक लोचकर समस्त सावद्य कर्मों का त्याग किया। दीक्षा की महत्ता से प्रभावित होकर आपके साथ एक हजार अन्य राजा और राजकुमारों ने भी दीक्षा ग्रहण की। उस समय आप वने ३ की तपस्या में थे। अयोध्या के राजा ब्रह्मदत्त के यहां भगवान् श्री अजित का प्रथम पारणा क्षीरान्न से सम्पन्न हुआ था।

केवल ज्ञान :

वारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरने के बाद भगवान् पुनः विनी-

१. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा., पृ. ६६

२. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा. पृ. ६६

३. तिलोप पण्यति गा. ६४४-६६७ में अष्टम भवत का उल्लेख है।

नामकरण :

आपके जन्म से सम्पूर्ण राज्य में अद्भुत परिणाम होने लगे । समृद्धि में लक्ष्मणपूर्व वृद्धि होने लगी । भाग्य भी बर्त कर्ई गया अधिक उत्थान होने लगा । इसके अतिरिक्त महाराज जिपारि के साथ अगम्य प्रतीत होने वाले कार्य भी सम्भव हो गये । अतः माता-पिता ने विशेषपूर्वक अपने पुत्र का नाम सम्भव रखा । 2

गृहस्थावस्था एवं दीक्षा :

गुवा होने पर सम्भव का विनाह मुन्दर राजकुमारियों से किया गया । जन्म से पन्द्रह लाख पूर्व व्यतीत होने पर पिता ने आपको राज्य-भार सौंप दिया । चार पूर्वांग अधिक शवालीग लाख पूर्व तक आप राज्य करते रहे । तदनन्तर मार्ग-शीर्ष पूर्णिमा के दिन मृगशीर्ष नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था, तब आपने तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देकर सर्वार्थ नामक षोडशिका में आरूढ़ होकर सहस्राम्रवण में पष्ठ तपस्या के साथ दिन के पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की । 3

आपके परम उच्च त्याग से देव, दानव एवं मानव सभी बहुत प्रभावित थे, क्योंकि आप चक्षु, श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों पर और क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप चार कपायों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर मुन्दित हुए । दीक्षित होते ही आपको मनः पर्यव शान उत्पन्न हुआ और जन जन के मन पर आपकी दीक्षा का बड़ा प्रभाव रहा । 4

विहार और पारणा :

जिस समय आपने दीक्षा ग्रहण की उस समय आपको निर्जल पष्ठ भक्त का तप था । दीक्षा के दूसरे दिन प्रभु सावस्वी नगरी में पधारे और सुरेन्द्र

1. जैनधर्म का मो० इति०, प्र० भा०, पृ० ६६
2. ख० महा० पु० ख०, पृ० ७२
3. आगमों में तीर्थ० चरित्र, पृ० १७६
4. जैनधर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ७०

दीक्षा एवं पारणा :

प्रजात्रयो को करुण्य-पालन और मोक्षार्थो की शिक्षा देते हुए साठे दशमि नाम पूर्ण वर्षों तक उनका पालन में राज्य का संचालन कर प्रभु ने दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। लोकान्तिक देवों की प्रार्थना और वर्षादान देने के पश्चात् माय शुक्ला द्वादशी को अभिनवि-अर्धाज्य महान के योग में एक हजार राजाओं के साथ भगवान् ने सम्पूर्ण पापकर्मों का त्याग किया और ने पंच मुष्टिक नान कर गिद्ध की माधी में संसम स्वीकार कर संसार में निवृत्त हो मुनि बन गये। उम समय आपकी देने की तपस्या थी।

दीक्षा के पश्चात् आप साकेतपुर पधारे और वहाँ के महाराज इन्द्रदत्त के यहाँ प्रथम पारणा किया। उम समय देवों ने पंच दिव्य प्रकट कर 'अहोदान-अहोदान' का दिव्य घोष किया। 13

केवलज्ञान :

दीक्षा ग्रहण करते ही आपने मोनश्चत धारणा कर लिया जिसका निर्वाह करते हुए उन्हीने अठारह वर्ष की दीर्घ अवधि तक कठोर तप किया - उग्र तप,

१. च० सह० पु० च०, पृ. ७५.

२. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. १७६.

३. जैनधर्म का मौ० इति०, प्र० भा० पृ० ७३.

अयोध्या के राजा महाराज मेघ थे, जिनकी धर्मपरायणा पत्नी का नाम मंगला-वती था। वैजयन्त विमान से च्युत होकर पुरुषसिंह का जीव इसी महारानी के गर्भ में स्थित हुआ। महापुरुष की माताओं की भांति ही महारानी मंगला-वती ने भी चौदह शुभ स्वप्नों के दर्शन किये और वैशाख शुक्ला अष्टमी की मध्यरात्रि को पुत्रश्रेष्ठ को जन्म दिया। जन्म के समय मघा नक्षत्र का योग था। माना-मिता और राजवंश ही नहीं सारी प्रजा राजकुमार के जन्म से प्रमुदित हो गयी। हर्षानिरेकवज महाराज मेघ ने समस्त प्रजाजन के लिये दण दिवसीय अन्नधि तह आमोद-प्रमोद की व्यवस्था की। १

नामकरण :

भगवान् श्री मुमति के नामकरण का भी एक रहस्य है। इसके पीछे एक कवि जैन के परिचर्य कथानक है, जो संक्षिप्त में इस प्रकार है:—२

एक समय एक घनाड्य व्यापारी अपनी दो पत्नियों को साथ लेकर व्यापार करने की दृष्टि से गया था। विदेश में ही एक पत्नी ने पुत्र स्तन को जन्म दिया। पुत्र का नामकरण दोनों पत्नियों ने किया। यद्यप्य अपने घर की ओर आते हुए वह व्यापारी अपने ही घर गया। अतः उसकी समस्त सम्पत्ति का स्वामी वह व्यापारी माना पुत्र था। पुत्रहीना पत्नी ने विचार किया—“यह पुत्रवाली पत्नी के स्वामी की तरह कितना यह ही जायगी और मेरी दुर्दशा होगी।” यह विचार कर उसने कहा—“यह पुत्र मेरा है, मेरा नहीं है।” यह शर्मा यात पर दण्डित हुए। पुत्र के नामकरण में जाई और अपना अमला महाराज मेघ के समस्त पुत्रों के नामकरण में आरंभ की। राजा विचार में पला गया। अन्त में उसने कहा—“यह पुत्र मेरा ही व्यापार नहीं मिलेगा रहा था। राजा ने पुत्र के नामकरण में जो अन्नधन मगल।

चतुर्थीन लाग पूरुं और नारत पूरुंग वरुं तत जागत सूत संगाना । पूरुं संस्कारुं के प्रमानरुनरुप उपरुता गगत पर राजा के मन में निरुक्ति का भाव प्रगाढ़ होने लगा और ने भोग कर्मुं की गभाप्ति कर संगत संगीकार करने की तैयार हुए । ११

दीक्षा एवं पारणा :

संघम का संकल्प दृढ़ होता गया और राजा सुमतिनाथ ने श्रद्धापूर्वक वर्षी-दान किया । वे स्वर्ग प्रबुद्ध हुए और वैशाखा शुक्ला नवमी को मघा नक्षत्र के योग में राजा सुमति पंच मुष्टि लोनकर सर्वथा विरागोन्मुग्ध हो गये, मुनि वन गये । आपके साथ एक हजार अन्य राजा भी दीक्षित हुए । दीक्षा ग्रहण करने के इस पवित्र अवसर पर आप पण्डित दो दिन के निर्जल तप में थे । अपने प्रथम पारणा विजयपुर के राजा पद्म के यहां किया । १२

केवल ज्ञान व देशना :

बीस वर्षों तक विविध प्रकार की तपस्या करते हुए भगवान् छद्मस्य श्रवस्था में विचरे । धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान से बड़ी कर्म निर्जरा की । फिर सहस्रनाम्रवन में पधारकर ध्यानावस्थित हो गये । शुक्ल ध्यान की प्रकंपता से चार घातिक कर्मों के ईंधन को जलाकर चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि की ।

केवलज्ञान की प्राप्ति कर भगवान् ने देव, दानव और मानवों की विशाल सभा में मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया और चतुर्विध संघ की स्थापना कर आप भाव तीर्थंकर कहलाये । ३

धर्म परिवार :

आपका धर्म परिवार निम्नानुसार था :

गणधर	—	१००
केवली	—	१३०००

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्य०, पृ० ३०

२. वही, पृ० ३०-३१, जैन धर्म का मौ० इति०, प्र० भा० पृ० ७७

३. जैन धर्म का मौ० इति०, प्र० भा० पृ० ७७

R 17

1. The first part of the document is a list of names and addresses of the members of the committee.

७. भगवान् श्री पद्मप्रभ (चिह्न-पद्म)

भगवान् श्री पद्मप्रभ छठे तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

प्राचीनकाल में सुसीमा नगरी नामक एक राज्य था । वहाँ के शासक महाराज अपराजित थे । धर्माचरण की दृढ़ता के लिये राजा की ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी । परमन्यायशीलता के साथ पुत्रवत् प्रजापालन किया करते थे । उच्च मानवीय गुणों को ही वे वास्तविक सम्पत्ति मानते थे और वे इस रूप में परम् धनाढ्य थे । वे देहधारी साक्षात् धर्म से प्रतीत होते थे । सांसारिक वैभव व भौतिक सुख-सुविधाओं को वे अस्थिर मानते थे । इसका निश्चय भी उन्हें हो गया था कि मेरे साथ भी इसका संग सदा-सदा का नहीं है । इस तथ्य को हृदयंगम कर उन्होंने भावी कष्टों की कल्पना को ही निर्मूल कर देने की योजना पर विचार प्रारम्भ किया । उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह निश्चय कर लिया कि मैं ही आत्मबल की वृद्धि कर लूँ । पूर्व इसके कि ये वाह्य-सुखोपकरण मुझे अकेला छोड़कर चले जाएँ, मैं ही स्वेच्छा से इन सब का त्याग कर दूँ । यह संकल्प उत्तरोत्तर प्रबल होता ही जा रहा था कि उन्हें विरक्ति की अति शक्त प्रेरणा अन्य दिशा से और मिल गई । उन्हें मुनि पिहिताश्रव के दर्शन करने और उनके उपदेशामृत का पान करने का सुयोग मिला । राजा को मुनि का चरणाश्रय प्राप्त हो गया । महाराज अपराजित ने मुनि के आशीर्वाद के साथ संयम स्वीकार कर श्रपना साधक जीवन प्रारम्भ किया । उन्होंने अहंत् भक्ति आदि अनेक आराधनाएँ की और तीर्थंकर नाम कर्म का उपाज्जन कर आयु समाप्ति पर ३१ सागर की परम स्थिति युक्त ग्रैवेयक देव बनने का मौभाग्य प्राप्त किया । ११

१. चौथीस तीर्थंकर : एक पयं०, पृ० ३२

धर्म-परिवार

धर्म-परिवार :

गणघर	---	१०७
केवली	---	१२०००
मनः पर्यवशानी	---	१०३००
अवधिज्ञानों	---	१००००
दैनिक्य लक्ष्यधारी	---	१६६००
वादी	---	६६००
साधु	---	३३००००
साधवी	---	४२००००
श्रावक	---	२७६०००
श्राविका	---	५०५०००

१. चौकीस तीर्थंकर : एक पर्यं०, पृ० ३४

२. जैन धर्म का मौ० इति० प्र० भा०, पृ० ६०

८. भगवान् श्री सुपाश्व (निहत्त-स्वस्तिक)

आप सातवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

क्षेमपुरी नगरी के योग्य शासक थे श्री नन्दीपेण । उस धर्मात्मा राजा को संसार से वैराग्य हो गया और उसने अरिदमन, नामक आचार्य के समीप प्रयज्ञ्या स्वीकार की । संयम एवं तप की उत्तम भावना में रमण करते हुए नन्दीपेण मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजंन किया । आयुष्य पूर्ण कर नन्दीपेण छठे श्रैवेयक में देव हुए । उनका आयुष्य अट्ठाइस सागरोपम था । १

जन्म एवं माता-पिता :

श्रैवेयक से निकलकर नन्दीपेण का जीव भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन विशाखा नक्षत्र में वाराणसी नगरी के महाराज प्रतिष्ठसेन की महारानी पृथ्वी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ । उसी रात्रि को महारानी पृथ्वी ने महापुरुषों के जन्म सूचक चौदह मंगलकारी शुभ-स्वप्न देखे ।

विधि पूर्वक गर्भकाल पूर्णकर माता ने ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के शुभदिन विशाखा नक्षत्र में पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

नामकरण :

गर्भकाल में माता पृथ्वी के पार्श्व द्योभित रहे । इसलिये महाराज प्रतिष्ठसेन ने इसी बात को विचार कर बालक का नाम सुपाश्व रखा । २

१. तीर्थंकर चरित्र, भा० १, पृ. १८५

२. छ० महा० पु० छ०, पृ० ८६

पाराशरनाथ :

भगवान् श्री गुरुदेव के वचनानुसार प्राणिक के समस्त प्राणानुसार भिन्न-
कारके मध्य जीवों को प्रतिबोध देते रहे । वे बीज पूर्वांग और जो मास कम एक
मास पूर्व तक विचरते रहे ।

आमुष्य काल निकट आते पर रामदेव निम्न पर परत पर पांच गी मुनिगों
के साथ एक मास के अनशन से फाल्गुन कृष्णमा सप्तमी को भूल नशान में गिर
गति को प्राप्त हुए । प्रभु का कुल आमुष्य बीज लागू पूर्व का था । १२

○

१. आगमों में तीर्थकर चरित, पृ० १८७

२. तीर्थकर चरित, भा० १, पृ० १८७

पूरा किया था और नरनाम जिज्ञा की शक्ति भी चंद्रमा के समान शुभ और दीप्तिमान थी। अतः नालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया।

गृहस्थावस्था:

युवा होने पर राजा महासेन ने उत्तम राज्य कन्याओं में प्रभु का पाणिग्रहण करवाया। ढाई लाख पूर्वं तक गुनराज पद पर रहकर फिर आप राज्य-पद पर अभिषिक्त किये गये और छः लाख पूर्वं से कुछ अधिक समय तक राज्य का पालन करते हुए प्रभु नीतिधर्म का प्रचार करते रहे। इनके राज्यकाल में प्रजा सर्वभांति सुख-सम्पन्न थी और कर्तव्य-मार्ग का पालन करती रही।²

दीक्षा एवं पारणा :

उनके जीवन में वह पल शीघ्र ही आगया जब भोग कर्मों का क्षय हुआ। राजा चन्द्रप्रभ ने वैराग्य धारण कर दीक्षा ग्रहण कर लेने का संकल्प व्यक्त किया। लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर वर्षादान के पश्चात् उत्तराधिकारी को शासन-सूत्र सौंपकर अनुराधा नक्षत्र के श्रेष्ठ योग में प्रभु चन्द्रप्रभस्वामी ने पीप कृष्णा त्रयोदशी को दीक्षा ग्रहण की। आगामी दिवस को पद्मगण्ड नरेश सोमदत्त के यहां पारणा हुआ।

केवल ज्ञान एवं देशना :

भगवान् श्री चन्द्रप्रभ ने तीन महीने तक छद्मकाल में विहार किया और पुनः चन्द्रपुरी नगरी में सहस्राश्रवन में पधारे। वहां पुन्नाग वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गये। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में द्युत की तपस्या में ध्यान की परमोच्च अवस्था में भगवान् ने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया।³ भगवान् ने समयसरण के मध्य विराजकर देशना प्रदान की और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव-तीर्थकर कहलाये। कुछ कम एक लाख पूर्वं तक केवली पर्याय में रहकर प्रभु ने लाखों जीवों का कल्याण किया।⁴

१. त्रिपिट., ३।६।४६

२. जैन धर्म का मौ० इ०, प्र० भा०, पृ० ८६-८७

३. धागमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० १८९

४. जैन धर्म का मौ० इति०, प्र० भा० पृ० ८६

१०. भगवान् श्री सुविधि (चिह्न-मकर)

भगवान् श्री चन्द्रप्रभ के उपरांत भगवान् श्री सुविधि नवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह में 'पुष्कलावती' नामक विजय में 'पुण्डरीकिणी' नामक नगरी थी । वहां महापद्म नामक राजा का राज्य था । उसने जगन्नाथ नामक आचार्य के पास संयमव्रत श्रंगीकार किया । दीक्षोपरांत पद्म मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । अन्त समय में अनशनपूर्वक देहोत्सर्ग कर वैजयन्त नामक अनुत्तर विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए । वहां उन्होंने तृतीया सागरोपम की आयु प्राप्त की । १

जन्म एवं माता-पिता :

काकन्दी नगरी के महाराज सुग्रीव इनके पिता और रामादेवी इनकी माता थी ।

वैजयन्त विमान से निकलकर महापद्म का जीव फाल्गुन कृष्णा नवमी को मूल नक्षत्र में माता रामादेवी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ । माता ने उसी रात्रि में चौदह मंगलकारी महाशुभ स्वप्न देखे । महाराज सुग्रीव से स्वप्नों का फल सुनकर वह आनंदित हो गई ।

गर्भकाल पूर्ण कर माता रामादेवी ने मृगशिर कृष्णा पंचमी को मध्यरात्रि के समय मूल नक्षत्र में सुखपूर्वक पुत्र रत्न को जन्म दिया । माता-पिता एवं नरेन्द्र-देवेन्द्रों ने जन्मोत्सव हर्षोल्लासपूर्वक मनाया ।

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० १६१

केवलज्ञान :

चार माह तक प्रभु विविध कष्टों को सहन करते हुए ग्रामानुग्राम विघ्नते रहे । फिर सहस्राम्रउद्यान में आकर प्रभु ने क्षपक श्रेणी पर आरोहण किया और शुक्लध्यान से घाति कर्मों का क्षय कर मालूर वृक्ष के नीचे कार्तिक शुक्ला तृतीया को मूल नक्षत्र में केवल ज्ञान की प्राप्ति की ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद देव-मानवों की सभा में प्रभु ने धर्मोपदेश दिया और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव-तीर्थंकर कहलाये ।^१

धर्म-परिवार :

गणधर	—	८८
केवली	—	७५००
मनः पर्यवजानी	—	७५००
अवधिजानी	—	८४००
चौदह पूर्वधारी	—	१५००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	१३०००
वादी	—	६०००
साधु	—	२०००००
माध्वी	—	१२००००
श्रावक	—	२२६०००
श्राविका	—	४७२०००

परिनिर्वाण :

श्रावृष्य राज्य निकट आने पर प्रभु सम्भेदुजिन्वर पर्वत पर एक हजार मुनियों के साथ पधारे । एक मास का अनशन हुआ और कार्तिक कृष्णमा नवमी को मूल नक्षत्र में अष्टादश पूर्वोदय और चार मास कम एक लाख पूर्व तक तीर्थंकर पद संयोग कर मोक्ष पधारे । प्रभु का कुल श्रावृष्य दो लाख पूर्व का था ।^२

१. जैन धर्म का सौ० इति०, प्र० भा०, पृ० ८६

२. श्रीरंकर चरित्र - प्रथम भाग, पृ० १९३

११. भगवान् श्री शीतल (चिह्न - श्रीवल्ल)

भगवान् श्री मुचिधि के बाद भगवान् श्री शीतल दसवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

प्राचीनकाल में मुभीमा नगरी नामक राज्य था, जहाँ के नृपति महाराज सदमोक्ष थे । राजा ने मुशीपंतलान तत् प्रजापालन का कार्य न्यायपूर्ण किया । राज्य में उनके मन में चिरस्ति का भाव उत्पन्न हुआ और अनाथों विस्थाप के कारण में उन्होंने संन्यास स्वीकार कर लिया । अनेकानेक उत्कृष्ट कोटि के तप और अर्थसम्पत्तियों के द्वारा उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । देहाप-साध के उपरान्त उनके जीव की प्राणत स्वयं में श्रीम गायत्री की स्थिति यो-ए-ए के रूप में स्थापित मिला । ११

काल श्रीम शीतल-निर्वाण :

कैवल्य प्राणत प्राप्त कर शिव पूर्णपांडु महाप में प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए । अन्तर्गत श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने श्रीम महाप्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए । अन्तर्गत श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने श्रीम महाप्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए ।

श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने स्वयं-प्रकाश प्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए । अन्तर्गत श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने श्रीम महाप्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए ।

श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने स्वयं-प्रकाश प्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए ।

श्रीम शीतल श्री महाप्राणी नन्दारिणी ने स्वयं-प्रकाश प्राणत प्राणत स्वयं में अक्षर-रूप में स्वयं-प्रकाश के तत्त्व-रूप में महाप्राणत दृष्टव्य की महाप्राणी नन्दारिणी के रूप में प्रकट हुए ।

केवलज्ञान :

। तीन महीने तक छद्मस्थकाल में विचरकर भगवान् श्री शीतल भद्रियलपुर नगर के सहस्राम्रच्छान में पधारे । वहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गये । पीप कृष्णा चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में धनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया । देवताओं ने प्रभु का केवलज्ञान उत्सव मनाया । भगवान् ने समयसरण के बीच एक हजार अस्सी धनुष ऊंचे चैत्य वृक्ष के नीचे रत्नसिंहासन पर विराजकर उपदेश दिया । भगवान् का उपदेश सुनकर आनंद आदि ८१ व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया ।^१ भगवान् ने चतुर्विध संघ की स्थापना की और भाव-तीर्थकर कहलाये ।

धर्म-परिवार :

गण एवं गणधर	—	८१
केवली	—	७०००
मनः पर्यवजानी	—	७५००
अवधि ज्ञानी	—	७२००
चौदह पूर्वघारी	—	१४००
सक्रिय लब्धिघारी	—	१२०००
वादी	—	५८००
गाधु	—	१०००००
गाध्वी	—	१००००६
श्रावक	—	२८६०००
श्राविका	—	४५८०००

परिनिर्वाण :

मोक्षकाल निकट आने पर प्रभु एक हजार मुनियों के साथ सम्मेदुशिलार पर्वत पर पधारे और एक मास का संथाग किया । वैशाख कृष्णा द्वितीया को पूर्वाषाढा नक्षत्र में प्रभु परमगिद्धि को प्राप्त हुए । प्रभु का कुल आयुष्य एक लाख वर्ष का था ।^२ कुछ कम पक्षीय हजार वर्ष तक प्रभु ने समय का पावन किया ।^३

१. अणसों में तीर्थंकर चरित्र पृ० १६४
 २. तीर्थंकर चरित्र, प्र. भा., पृ. २०१
 ३. जैन धर्म का मो. इ. प्र. भा., पृ. ६३

१२. भगवान् श्री श्रियांस (चिह्न-गंगा)

तीर्थंकर परम्परा में भगवान् श्री श्रियांस का ग्यारहवां स्थान है ।

पूर्वभूव :

पुष्कराब्द द्वीप के पूर्व विदेह के कच्छविजय में क्षेमा नामक नगरी थी । वरुण के राजा का नाम नलिनी गुल्म था । वह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति था । एक बार क्षेमा नगरी में वज्रदत्त नामक आचार्य का आगमन हुआ महाराजा नलिनी गुल्म आचार्य का आगमन सुनकर उनके दर्शन के लिये गये । आचार्य का उपदेश सुनकर उन्होंने संयमव्रत अंगीकार कर लिया । वे मुनि बन गये । प्रव्रज्या ग्रहण करके उन्होंने कठोर तप किया और तीर्थंकर नामकर्म का उपाजन किया । अन्त में बहुत समय तक चारित्र्य का पालन करते हुए आयु पूर्ण की और मरकर महाशुषल नामक देवलोक में महाद्विक देव हुए ।^१

जन्म एवं माता-पिता :

ज्येष्ठ कृष्णा पक्षी के दिन श्रावण नक्षत्र में नलिनीगुल्म का जीव स्वयं से चलकर भारतवर्ष की भूपणस्वरूपा नगरी सिद्धपुरी के अधिनायक महाराज विष्णु की पत्नी मद्गुणधारिणी महारानी विष्णुदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । माता ने उमी रात में चौदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्ण कर माता ने कान्गुन कृष्णा द्वादशी को सुषपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । आपके जन्म-काल के समय सर्वत्र सुख, शान्ति और हर्षोल्लास का वातावरण फैल गया ।^२

नामकरण :

बालक के जन्म से न केवल राजपरिवार वरन् समस्त राष्ट्र का कल्याण

१. आणसों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. १६५

२. जैनधर्म का मौ. इ., प्र. मा. प. ६४

धर्मप्रधान :

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्रभु उग्र समय की राजनीति के केन्द्र पीतनपुर पधारे। पीतनपुर त्रिपृष्ठ वाग्देव की राजधानी थी। उग्रान के रक्षक ने आकर वाग्देव को शुभ संवाद दिया - "महाराज तीर्थंकर श्री श्रेयांस अपने नगर के उग्रान में पधारे हैं।" अनानक यह संवाद सुनकर वाग्देव हर्षविभोर हो गये। इस गुणी में उन्होंने इतना पुरस्कार दिया कि वह रक्षक धन-सम्पन्न हो गया। वाग्देव और उनके बड़े भाई अक्षत बलदेव प्रभु के दर्शन करने आये। प्रभु ने मानव के कर्तव्यों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए हृदयस्पर्शी उपदेश दिया।

वाग्देव त्रिपृष्ठ इस कालचक्र के पहले वाग्देव थे। वे अत्यन्त पराक्रमी और कठोर शासक थे। उनकी भुजाओं में अद्भुत बल था। एक बार एक भयंकर क्रूर सिंह से निःशस्त्र होकर मुकाबला किया और सिंह के जबड़े पकड़कर यों चीर डाले जैसे पुराना कपड़ा चीर रहे हों। उस समय के क्रूर और अत्याचारी शासक अश्वघ्रीव (प्रति वाग्देव) के आतंक से प्रजा को मुक्त कर वे तीन खण्ड के एक छत्र सम्राट वाग्देव बने थे। आज्ञा के उल्लंघन के अपराध में उन्होंने शय्यापालक के कान में लौलता हुआ सीसा उंटेलवा दिया था। जिससे उनको सातमी नरक में जाने का आयुष्य बंधा।

जब वाग्देव त्रिपृष्ठ ने प्रभु श्री श्रेयांस की देहना सुनी तो सहसा प्रकाश-सा उनके हृदय में छा गया। राजनीति के वे घुरंघर थे किन्तु आत्मविद्या में श्राज भी बालक थे। प्रभु का उपदेश सुनकर दया, करुणा, समता और भक्ति के भाव उनके हृदय में जाग्रत हो उठे। संस्कारों के इस परिवर्तन से वाग्देव

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पद्य., पृ. ५३

१३. भगवान् श्री वासुपूज्य (चिह्न-महिष)

वारह्वे तीर्थंकर भगवान् श्री वासुपूज्य हूए ।

पूर्वभव :

पुष्कराद्ध द्वीप के पूर्व, विदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्नसंचया नामक नगरी थी । वहां के शासक का नाम पद्मोत्तर था । वज्रनाभ मुनि के समीप उसने चारित्र्य ग्रहण किया । संयम और तप की उत्कृष्ट भावों से आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजंन किया । अन्तिम समय में समाधिपूर्वक देह-त्याग कर वे प्राणतकाल में महद्दिक देव बने । १

जन्म एवं माता-पिता :

प्राणत स्वर्ग से निकल कर पद्मोत्तर का जीव तीर्थंकर रूप से उत्पन्न हुआ । भारत की प्रसिद्ध चम्पानगरी के प्रतापी राजा वसुपूज्य इनके पिता और महारानी जयादेवी माता थी । ज्येष्ठ शुक्ला नवमी की शतभिषा नक्षत्र में पद्मोत्तर का जीव स्वर्ग से निकलकर माता जयादेवी की कुक्षि में गर्भ-रूप से उत्पन्न हुआ । उसी रात्रि में माता जयादेवी ने शौदह शुभस्वप्न देने जो महान् पुण्यात्मा के जन्म-सूचक थे । उचित आहार विहार से माता ने गर्भ-काल पूर्ण किया और फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र के योग में मृक्षपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । २

नामकरण :

महाराजा वसुपूज्य के पुत्र होने के कारण आपका नाम वासुपूज्य रखा गया ।

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. ११८

२. जैनधर्म का मौ० ३०, प्र० भा०, पृ० १९

केवली होकर भगवान् ने देव-असुर-मानवों की विशाल सभा में धर्म-देखाना दी जिसमें दशविध धर्म का स्वरूप समझाकर चतुर्विध संघ की स्थापना की और भाव तीर्थकर कहलाये । ११

धर्म-प्रभाव :

विहार करते हुए जब भगवान् द्वारिका के निकट पधारे तो राजपुरुष ने वासुदेव द्विपृष्ठ को भगवान् के पधारने की शुभ-सूचना दी । भगवान् श्री वासुपूज्य के पधारने की शुभ-सूचना की बधाई सुनाने के उपलक्ष में वासुदेव ने उसको साढ़े चारह करोड़ मुद्राओं का प्रतिदान दिया । त्रिपृष्ठ के बाद ये इस समय के दूसरे वासुदेव होते हैं । भगवान् श्री वासुपूज्य का धर्म शासन भी सामान्य लोकजीवन से लेकर राजघराने तक व्यापक हो चला था । १२

धर्म-परिवार :

गण एवं गणघर	—	६६
केवली	—	६०००
मनः पर्यवशानी	—	६१००
खलमिशानी	—	५४००
चौरह् पूर्वभारी	—	१२००
वैश्रव्य पविधधारी	—	१००००
वार्दी	—	४७००
याधु	—	७२०००
याध्वः	—	१०००००
आपक	—	२१५०००
आर्षिहा	—	४३६०००

परिनिर्वाण :

परिनिर्वाण निकट जानकर प्रभु ३०० मुनियों के साथ चम्पानगरी पहुँचा

१. जैन धर्म का धर्म. द. प्र. भा., पृ. १००

२. जैन धर्म का धर्म. द. प्र. भा., पृ. १०१

본 계획은 1957년부터 1961년까지의 5개년 기간 동안 국가 경제의 발전과 국민 생활의 향상을 위하여 수립된 것으로, 이 기간 동안에 국가 경제의 기본 틀을 확립하고, 중공업의 발달을 꾀하며, 농업 생산을 증진시키고, 인민 생활을 개선하는 데 주력할 것이다.

이 계획의 기본 원칙은 인민 생활의 향상을 최우선으로 삼고, 국가 경제의 균형 있는 발전을 꾀하며, 자립적 경제 체제를 건설하는 데 있다.

केवलज्ञान :

दो वर्षों तक छद्मस्थ काल में विचर कर भगवान् पुनः कापिलपुर के सहस्राम्रउद्यान में पधारें। वहाँ जम्बू वृक्ष के नीचे पण्ड तप के साथ कायोत्सर्ग मुद्रा में लीन हो गये। उस समय ध्यान की परमोच्च अवस्था में पीप शुक्ला पण्ठी के दिन उत्तराभाद्र पद नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान महोत्सव मनाया। तदनंतर भगवान् ने देवनिर्मित समचसरण में विराजकर धर्मोपदेश दिया। और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव तीर्थ-कर कहलाये।

धर्म-परिवार :

आपके संघ में मन्दर आदि छप्पन गणधरादि सहित निम्नलिखित परिवार था :-

गण एवं गणधर	—	५६
केवली	—	५५००
मनः पर्यवज्ञानी	—	५५००
अवधिज्ञानी	—	४८००
चौदहपूर्वधारी	—	११००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	६०००
वादी	—	३२००
साधु	—	६८०००
साध्वी	—	१००८००
श्रावक	—	२०८०००
श्राविका	—	४२४०००

परिनिर्वाण :

केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद दो कम पन्द्रह लाख वर्षों तक प्रभु पृथ्वी पर विहार करने हुए विचरते रहे। फिर निर्वाणकाल निकट आने पर सम्मोदशिखर

१५. भगवान् श्री अनन्त (विष्णु-भाव)

चीन्हों तीर्थकर भगवान् श्री अनन्त हुए ।

पूर्वभव :

घातकी गण्डकीप के प्राग्निदेह में ऐरावत नामक निजग में अग्निदा नामक नगरी थी । नगरी भन-भान्ग से ममृश थी । वहां के राजा पद्मरथ बड़े वीर और धार्मिक मनोवृत्ति वाले थे । एक बार नगर में "विततरथ" नामक पासन प्रभावक आचार्य पधारे । आचार्य के उपदेश से उसका मन वैराग्य-भाव से भर उठा । घर आकर उसने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपा और पुनः आचार्य की सेवा में उपस्थित हो दीक्षित हो गया । दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत उन्होंने आचार्य के समीप श्रुति का अध्ययन किया । आगमों का ज्ञान प्राप्त कर पद्मरथ मुनि कठोर तप करने लगे । तप संयम की उत्कृष्ट साधना करते हुए उन्होंने तीर्थकर नाम कर्म का उपाजंन किया । तप से अपने शरीर को क्षीण किया और आत्मा को उज्ज्वल बनाया । अपना आयुष्य पूर्ण कर समाधि-पूर्वक देह त्याग कर वे प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए और महद्विक देव बने । १

जन्म एवं माता-पिता :

श्रावण कृष्णा सप्तमी को रेवती नक्षत्र में पद्मरथ का जीव स्वर्ग से निकलकर अयोध्या नगरी के महाराज सिंहसेन की रानी सुयथा की कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुआ । माता सुयथा ने उस रात को चीदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्णकर माता सुयथा ने वैशाख कृष्णा त्रयोदशी के दिन रेवती नक्षत्र के योग में सुखपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । देव-दानव और मानवों ने जन्मोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया । २

१. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ. २०४
२. जैनधर्म का मौ. इ., प्र. भा., पृ. १०५

महामागजनाल में पगारे । तपों तपोक तप के नीचे तपासापविष हो गये । पैसात कृपा तपुर्गी के दिन देवी तप में तपसापी तपों का दाम का केवलज्ञान और केवल तपसापविष किया । देवों ने तपसापु का केवलज्ञान उक्तव्य मनाया । तपसापु ने देव निमित्त तपसापु में तपसापु तपसापु देना दिया । १ तपसापु देकर तपसापु तपसापु मंग की तपासापु की और तपसापु तीर्थकर महानाये ।

धर्म-परिवार :

आपका धर्म-परिवार निम्नानुसार था :--

गण एवं गणधर	—	५०
केवली	—	५०००
मनः पर्यवज्ञानी	—	५०००
अवधि ज्ञानी	—	४३००
चौदह पूर्वधारी	—	६००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	८०००
वादी	—	३२००
साधु	—	६६०००
साध्वी	—	६२०००
श्रावक	—	२०६०००
श्राविका	—	४१४०००

परिनिर्वाण :

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सात लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर चंद्र दुक्ला पंचमी के दिन रेवती नक्षत्र में सम्भेदुशिखर पर्वत पर एक मास का अन-पान ग्रहणकर सात मुनियों के साथ आपने मौल प्राप्त किया । भगवान् श्री अनन्त ने कुमारावस्था में साढ़े सात लाख वर्ष, राज्यकाल में पन्द्रह लाख वर्ष एवं संयम पालन में सात लाख वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार भगवान् की कुल आयु तीस लाख वर्ष की थी । २

०

१. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ० २०५

२. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ० २०६

3
1
2

नामकरण :

नामकरण के दिन ताम्रिणा परिवार का पुत्र भित्तवर्म को महाराज भानु ने बताया कि जब नामक गर्भ में था तब महाराजी मृगया को गर्भ गणन के उत्तम योद्धा उदरान्न लोके रहे तथा भावना भी मर्त्य गर्भ प्रधान ही नहीं रही। इसलिये नामक का नाम गर्भ रखा जाने। अतः नामक का नाम गर्भ रखा गया।

गृहस्थावस्था :

क्रीड़ा करते हुए गुण-सौमन के साथ आपका ताल्यकाल व्यतीत हुआ और आप युवा हुए। सौमनकाल तक आपका व्यक्तित्व अनेक गुणों से सम्पन्न हो गया। माता-पिता का आदेश स्वीकार करते हुए आपने विवाह किया और सुखी विवाहित जीवन भी व्यतीत किया।

जब आपकी आयु छार्द लाग्य वर्ष की हुई तो पिता महाराजा भानु ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। शासनारूढ़ होकर महाराजा धर्म ने न्यायपूर्वक और वात्सल्य भाव से प्रजा का पालन और रक्षण किया। पांच लाग्य वर्ष तक इस प्रकार राज्य करने पर उनके भोग-कर्म समाप्त हो गये। ऐसी स्थिति में उनके मन में विरक्ति के भाव श्रंकुशित होने लगे। 12

दीक्षा एवं पारणा :

लोकान्तिका देवों के प्रार्थना करने पर वर्ष भर तक दान देकर नागदत्ता षिविका से प्रभु नगर के बाहर उद्यान में पहुँचे और एक हजार राजाओं के साथ बेले की तपस्या से माघ शुक्ला त्रयोदशी को पुष्य नक्षत्र में सम्पूर्ण वापों का परित्याग कर आपने दीक्षा ग्रहण की। सोमनसनगर में जाकर धर्मसिंह के यहाँ प्रभु ने परमान्न से प्रथम पारणा किया। देवों ने पंच-दिव्य वरसा कर दान की महिमा प्रकट की। 13

१. त्रिपटि०, ४।५।४६ और च० महा० चरि०, पृ० १३३, भाव० चूर्ण पूर्वभाग, पृ० ११
२. चौबीस तीर्थंकर : एक पद्ये., पृ० ७१
३. जैन धर्म का मौ. इ., प्र. मा. पृ. १०६

परिनिर्वाण :

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान् सम्मेदशिलर पर पधारे। बाठ सी मुनियों के साथ आपने एक मास का अनशन ग्रहण किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन पुण्य नक्षत्र के योग में भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया। भगवान् ने ढाई लाख वर्ष कुमारावस्था, पांच लाख वर्ष राजा के रूप में एवं ढाई लाख वर्ष व्रत पालन में व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान् की कुल आयु दस लाख वर्ष की थी।

वज्रायुध की निस्वार्थवृत्ति से देव प्रसन्न हुआ श्रीर दिव्यअलंकार भेंट कर वज्रायुध के सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हुए चला गया ।

किसी समय वज्रायुध के पूर्वभव के शत्रु एक देव ने उनको क्रीड़ा में देखकर ऊपर से पर्वत गिराया और उन्हें नागपाश में बांध लिया, परन्तु प्रबल पराक्रमी वज्रायुध ने वज्रश्लेष नाराच-संहनन के कारण एक ही मुष्टि-प्रहार से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और नागपाश को भी तोड़ फेंका ।

कालांतर में राजा क्षेमंकर ने वज्रायुध को राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर भाव तीर्थंकर कहलाये । उधर भावी तीर्थंकर वज्रायुध ने आयुध शाला में चक्ररत्न के उत्पन्न होने पर छः खण्ड पृथ्वी को जीतकर सार्वभौम सम्राट का पद प्राप्त किया और सहस्रायुध को युवराज बनाया ।

एक बार जब वज्रायुध राजसभा में बैठे हुए थे कि 'वचाओ । वचाओ ।' की पुकार करता हुआ एक विद्याधर वहां आया और राजा के चरणों में गिर पड़ा ।

शरणागत जानकर वज्रायुध ने उसे आश्वस्त किया । कुछ समय बाद ही हाथ में शस्त्र लिये एक विद्याधर दम्पती का आगमन हुआ और अपने अपराधी की मांग की ।

महाराज वज्रायुध ने उनको पूर्वजन्म की बात सुनाकर उपशान्त किया और स्वयं भी पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की । वे संयम साधना के पदचाद पादोपगमन संथारा कर आयु का श्रंत होने पर प्रवेयक में देव हुए ।

प्रवेयक से निकलकर वज्रायुध का जीव पुण्डरीकिणी नगरी के राजा घनरथ के यहां महारानी प्रियमती की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । उसका नाम मेघरथ रखा गया ।

महाराज घनरथ की दूसरी रानी मनोरमा से वृद्धरथ का जन्म हुआ । युवा होने पर सुमदिरपुर के राजा की कन्या के साथ मेघरथ का विवाह हुआ । मेघरथ महान् पराक्रमी होकर भी बड़े दयानु और साहसी थे ।

१६. भगवान् श्री अर (विष्णु-नरनामं स्तम्भिक)

भगवान् कुन्तुनाग के परवान् अन्तर्गत होने वाले अठारहवें तीर्थंकर हुए भगवान् श्री अर ।

पूर्वभव :

जम्बूद्वीप के पूर्वदिशेह में सुसीमा नामक रमणीय नगरी थी । वहाँ के धनपति वीर नामक राजा थे । उन्होंने संवर नामक आचार्य के उपदेश को सुनकर दीक्षा ग्रहण करली । चारित्र्य ग्रहण कर तपः साधना के द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजन किया । अन्त में अगशनपूर्वक देह का त्याग कर नीचै गवैयक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए । १

जन्म एवं माता-पिता :

गवैयक से निकलकर धनपति का जीव हस्तिनापुर के महाराज सुदर्शन की रानी महादेवी की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को गर्भरूप में उत्पन्न हुआ और उसी रात को महारानी ने चौदह शुभ स्वप्नों को देखकर परम आनन्द प्राप्त किया ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर मृगशिर शुक्ला दशमी को रेवती नक्षत्र में माता ने सुख-पूर्वक कनक-वर्णीय पुत्ररत्न को जन्म दिया । देव और देवेन्द्रों ने जन्म महोत्सव मनाया । महाराज सुदर्शन ने भी नगर में आमोद-प्रमोद के साथ प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया । २

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. २३७

२. जैन धर्म का सौ. इति. प्र. भा., पृ. १२२

राज्य वैभवं का त्याग कर संन्यस्य गृहण करने की अभिलाषा ज्ञापन की। लोकान्तिक देवों ने आकर नियमानुसार प्रभु से प्रायश्चा की और अरविन्द कुमार को राज्य सौंपकर आप वर्षीदान में प्रवृत्त हुए तथा मानकों को इच्छा-नुसार दान देकर एक हजार राजाओं के साथ नष्टे समारोह के साथ दीक्षाएं निकल पड़े।

सहस्राम्रवण में आकर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को देखती महान में छट्ट भक्त बेलें की तपस्या से सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर प्रभु ने विधिवत् दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही आपको मनःपर्यवसान उत्पन्न हुआ। राजपुर नगर में अपराजित राजा के यहाँ प्रभु ने परमान्त से पारणा ग्रहण किया। १

केवलज्ञान

तीन वर्ष तक छद्मस्थावस्था में रहने के बाद भगवान् हस्तिनापुर के सहस्राम्रवण में पधारे। वहाँ कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन शुक्ल ध्यान की उच्च अवस्था में आश्रवृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई और उसमें विराजकर प्रभु ने धर्मोपदेश देकर चतुर्विध संघ की स्थापना की। १२ चतुर्विध संघ की स्थापना कर प्रभु भाव-तीर्थकर एवं भाव-अरिहंत कहलाये। १२

धर्म-परिवार :

गण एवं गणधर	—	कुंभजी आदि ३३ गणधर एवं ३३ ही गण ।
केवली	—	२८००
मनःपर्यवज्ञानी	—	२५५१
अवधिज्ञानी	—	२६००

१. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा., पृ. १२३

२. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ. २३८

३. भाव अरिहंत १८ आत्मिक दोषों से मुक्त होते हैं।

पूर्वभाग ।

कर्त्तव्य के परिष्कार महाभारत के प्रति राजाओं के जन्म से भी १५०० वर्षों
 तक भारत में पूर्ण भी । इस युद्ध में राजा के प्रति प्रति किया गया महाभारत
 महावन से । वे अत्यन्त योग्य, असाधु और धर्मोन्नासे शासक थे । उनमें राजा
 भी नाम कम नहीं था और राजा उन्हें न छत्र नामक पुत्र ही प्रति हर्ष भी ।
 वे भी महाभारत महावन से प्रति भी महाभारतों के साथ अपना निराल किया
 था किन्तु उनके मन में महाभारत के प्रति महाभारतों का भाव था, अतः
 महाभारत के युद्ध होने पर उन्हें राज्यभार तोपाय स्वयं ने सर्व-मेवा और
 आत्म-कल्याण का निश्चय कर लिया । इनके युद्ध-दृष्ट के साथी बाल्यकाल के
 छः मित्र- १. धर्म, २. पूरण, ३. वसु, ४. अन्त, ५. वैश्वदेव और ६. अभि-
 चन्द्र थे । इन मित्रों ने भी महावन का अनुसरण किया । सांसारिक संतापों से
 मुक्ति के अभिलाषी महावन ने जब संघम अत ग्रहण करने का निश्चय किया
 तो इन मित्रों ने न केवल इस विचार का समर्थन किया, अपितु इस नवीन मार्ग
 पर राजा के साथी बने रहने का अपना विचार व्यक्त किया । अतः इन सातों
 ने अतधर्म मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली । दीक्षा प्राप्त कर सातों मुनिवों ने
 यह निश्चय किया कि हम सब एक ही प्रकार की और एक ही समान तपस्या
 करेंगे । कुछ काल तक तो उनका यह निश्चय क्रियान्वित होता रहा, किन्तु
 मुनि महावन ने कालान्तर में यह सोचा कि इस प्रकार एक समान फल सभी

महाराज कुंभ द्वारा मांग अस्वीकृत करने पर उन्होंने भूमिपतियों ने अपनी सेना लेकर मिथिला पर आक्रमण कर दिया और अग्नि के दान पर मल्ली को प्राप्त करने का विचार करने लगे ।

महाराज कुंभ इस आक्रमण का मुकाबला करने में अपने आपको असमर्थ समझकर चिंतित हो उठे, फिर भी किलाबंदी कर युद्ध की तैयारी में जुट गये ।

चरण बंदन के लिये आई हुई मल्ली ने जब पिताश्री को चिंतित देखा और चिंता का कारण जाना तो विनयपूर्वक कहा- "महाराज ! आप किंचित मात्र भी चिंतित न हों, मैं सब समस्या का ठीक ढंग से समाधान कर लूंगी । आप इन्हें राजाओं को दूत भेजकर अलग अलग रूप में आने का निमंत्रण भेज दीजिये ।"

मल्ली की योग्यता, बुद्धिमत्ता और नीति-मर्यादयता से प्रभावित एवं आश्चर्य होकर महाराज ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर इन्हें राजाओं को पृथक् पृथक् आने का निमंत्रण भिजवा दिया ।

उद्देश के अनुसार इन्हें राजा मिथिला पहुंचे । वहां उन्हें अलग अलग बने हुए प्रवेग द्वारों से प्रवेग कराकर पूर्व निर्मित मोहन धर में ठहराया गया । उनमें एक माकेतपुरी के राजा प्रतिबुद्ध, दूसरे चम्पा नरेश चन्द्रछाग, तीसरे श्रावस्ती नगरी के नरेश श्कनी, चौथे वाराणसी के शंख, पांचवें हस्तिनापुर के अदीनगद्गु और छठे कम्मिलपुर नरेश जितगद्गु थे । ये सब अपने लिये निर्दिष्ट अलग अलग प्रकोष्ठों में पहुंचकर अगोक वाटिका स्थित सुवर्ण-भुवली, जो कि पूर्ण रूप से मल्ली की आकृति के अनुकूल बनवाई गई थी, देखने लगे । प्रकोष्ठों की रचना कुछ इस प्रकार से की गई थी कि एक दूसरे को देखे बिना वे इन्हें राजा मल्ली के रूप को देख सके ।

मल्ली ने जब इन राजाओं को रूप-दर्शन में लग्नय देखा तो पुतली पर का टक्कन हटा दिया । टक्कन हटते ही चिर संचित अन्न की दुर्गन्ध चारों ओर फैल गई और सब नरेश नाक बंद कर इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगे ।

महाराज कुंभ द्वारा मांग अर्थात् दान करने पर वहाँ भूमिपतियों ने अपनी सेवा लेकर मिथिला पर आक्रमण कर दिया और मक्ति के बल पर मल्लों को प्रान्त करने का विचार करने लगे ।

महाराज कुंभ इस आक्रमण का मुकाबला करने में अपने प्राणको अममयं समझकर चिन्तित हो उठे, फिर भी विजयवंशी कर युद्ध की तैयारी में जुट गये ।

जयसंकेत के लिये लार्ड हर्ष मल्लों ने जब विजयवंशी को विजित देना और विजय का कारण जाना तो विजयवंशीक राजा- "महाराज ! आप विजित प्राप्त की विजित न हो, मैं सब सम्भवता का ठीक उत में समझाए कर चुकी । आप लार्ड मल्लों को दूत भेजकर अपने- अपने रूप में जाने का विचारण भेज दीजिये ।"

मल्लों की शोचनीय, वृद्धिमान और नीति-समयमान में प्रभावित एवं कावचक होकर महाराज ने सब पर धर - का शोचनीय कर लार्ड मल्लों को दूत भेजकर अपने- अपने विचारण भेज दिया ।

२१. भगवान् श्री मुनिसुव्रत (चिह्न-कूर्म-कच्छुवा)

भगवान् श्री मुनिसुव्रत बीसवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

जम्बू द्वीप के अपर विदेह में भरत नामक विजय में चम्पा नामक सुन्दर नगरी थी । वहाँ के राजा का नाम सुरश्रेष्ठ था । वह अत्यन्त धर्मपरायण राजा था ।

एक समय नन्दन नामक तपस्त्री स्थविर चम्पानगरी में पधारे और उद्यान में ठहरे । मुनि का आगमन सुनकर राजा मुनि के दर्शनार्थ उद्यान में गया । वंदना करने के पश्चात् वह मुनि की सेवा में बैठ गया । मुनि द्वारा उसे संसार की बिसारता का उपदेश दिया गया । उपदेश सुनकर राजा विरक्त हो गया । राज वैभव का त्याग कर राजा ने मुनिव्रत ग्रहण कर लिया । दीक्षोपरांत उसने कठोर तप किया और बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । दीर्घकाल तक विशुद्ध संयम का पालन करते हुए उसने अनशन द्वारा देह त्याग किया । वह प्राणत नामक दसवें स्वर्ग में महर्द्धिक देव बना । १

जन्म एवं माता पिता :

स्वर्ग की स्थिति पूर्ण कर सुरश्रेष्ठ का जीव श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रावण नक्षत्र में स्वर्ग से निकलकर राजगृही के महाराज सुमित्र की महारानी देवी पद्मावती के गर्भ में उत्पन्न हुआ । उसी रात माता ने मंगलकारी चौदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्ण होने पर ज्येष्ठकृष्णा नवमी के दिन

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० ३२४

२२. भगवान् श्री नमि (विमान-कथा)

भगवान् श्री नमि उत्तरीयमें तीर्थंकर हुए । आपका जननरूप बीयमें तीर्थंकर भगवान् श्री मुनिमुद्रन के लगभग १३: नाग वर्ष पश्चात् हुआ ।

पूर्वभूत :

जम्बूद्वीप के पश्चिम में महाविदेह के भरत विजय में कौण्डिनी नामक नगरी थी । वहाँ के राजा का नाम सिद्धार्थ था । महाराज सिद्धार्थ ने मुद्रान्त मुनि ने उपदेश मुनिकर दीक्षा ग्रहण की और कठोर तप कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपासन किया । अन्त में अनशनपूर्वक देहत्याग कर अपराजित नामक अनुत्तर विमान में महदिक देव बने । ११

जन्म एवं माता पिता :

सिद्धार्थ राजा का जीव स्वर्ग से निकलकर श्राश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र में मिथिला नगरी के महाराज विजय की पत्नी महारानी वप्रा के गर्भ में उत्पन्न हुआ । उसी रात माता ने मंगलकारी चौदह शुभ स्वप्न देखे । योग्य आहार-विहार और आचार से महारानी ने गर्भ का पालन किया ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर माता वप्रा देवी ने श्रावण कृष्णा अष्टमी को अश्विनी नक्षत्र में कनकवर्णीय पुत्ररत्न को सुप्तपूर्वक जन्म दिया । तरेन्द्र और सुरेन्द्रों ने मंगल महोत्सव मनाया । १२

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० ३२७

२. जैन धर्म का सौ० इति०, : प्र० भा०, पृ० १३६

धर्म-परिवार :

सदस्य पर्यटनपर	—	१७ मज और १७ मजघर
केन्द्रीय	—	१६००
सदस्यपर्यटनपर	—	१२०७
अध्यापिका	—	१६००
वीर्य पूर्वपर्यटनपर	—	४५०
वैदिकपर्यटनपर	—	५०००
वादी	—	१०००
साधु	—	२००००
शास्त्री	—	४१०००
आनक	—	१७००००
आविष्य	—	३४८०००

परिचयिका :

श्रीकलाप विभाग आगे पर भगवत्सु सम्बोधितपर पर पद्यारे और एक हलार-मुनिगों के साथ बनशन किया । एक मास के बनशन के बाद संसार सम्बन्ध सपत्नी की अविनशी बनशन के योग में प्रभु समस्त कर्मों का दाय कर मोक्ष पगारे ।

प्रभु श्री हलार आर श्री विद्यागु पर्य और तीग मास तक केवली पर्याय में भगवत्सु का लक्षार करते रहे ।

श्री. कति., म. भा., पृ. १२७
१, पृ. १५७

समस्त संस्कृतियों में ही मिलती है, क्योंकि इस ग्रंथ में अनेक लीयंकर, पाशार्थि, बालुदेव एवं बलदेव नाम मिले गये हैं ।

महावाक् अग्निज्जेमि का गीत गीतम घोर कुल पुत्रि या 12 पंक्त और वृत्ति दो षड्भुजे । अग्निज्जेमि के महा पुत्रि हुए पाशार्थि थे । अग्निज्जेमि अपने वृत्ति हुए के महापु पुत्र होने से उन्हें 'पुत्रि-पुत्रा' कहा गया है । 13 इन महापु महावाक् अग्निज्जेमि गीतम गीतम, पंक्त पुत्रि हुए के थे ।

अनुक्रम सौंदर्य एवं पाराक्रम :

इस कारण सब निराश थे । श्रीकृष्ण ने अपनी पटरानियों से कहा कि वे किसी प्रकार अरिष्टनेमि को विवाह के लिये तैयार करें । इस प्रसंग में जब रानियों ने अनेकविध प्रयास कर अरिष्टनेमि से विवाह करने की प्रार्थना की तो वे केवल मुस्करा दिये । बस । इसे ही स्वीकृति मान ली गई ।

श्रीकृष्ण की एक पटरानी सत्यभामा की बहन राजीमती को अरिष्टनेमि के लिये सर्वप्रकार से योग्य पाकर श्रीकृष्ण ने कन्या के पिता उग्रसेन के समक्ष इस सम्बन्ध में प्रस्ताव रखा । उग्रसेन ने तत्काल प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । अरिष्टनेमि ने इन प्रयत्नों का विरोध नहीं किया और न ही वाचिक रूप से उन्होंने अपनी स्वीकृति भी दी ।

यथा समय अरिष्टनेमि की भव्य वारात सजी । अनुपम शृंगार कर वस्त्राभूषण से सजाकर दूल्हे को विणिष्ट रथ पर धाड़ड़ किया गया । समुद्र-विजय सहित समस्त दशाहं श्रीकृष्ण, बलराम और समस्त यदुवंशी उल्लसित मन के साथ सम्मिलित हुए । वारात की शोभा श्रद्धातीत थी । अपार वैभव और शक्ति का समस्त परिचय यह वारात उस समय देने लगी थी । स्वयं देवताओं में इस शोभा के दर्शन करने की लालसा जागी । सौधर्मेंद्र इस समय चिंतित थे । वे सोच रहे थे कि पूर्व तीर्थंकर ने तो २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमी स्वामी के लिये घोषणा की थी कि वे बाल ब्रह्मचारी के रूप में दीक्षा लेंगे । फिर इस समय यह विपरीताचार कैसा ? उन्होंने अवधि ज्ञान से पता लगाया कि यह घोषणा विफल नहीं होगी । वे किंचित तुष्ट हुए किन्तु ब्राह्मण का वेश धारण कर वारात के मामले का पढ़े हुए और श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि कुमार का विवाह जिस मग्न में होने जा रहा है, वह महा अनिष्टकारी है । श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को फटकार दिया । तिरस्कृत होकर ब्राह्मण वेशधारी मोघर्मेंद्र अरुण्य हो गये, किन्तु यह चुनौती दे गये कि आप अरिष्टनेमि का विवाह कैसे करते हैं ? हम भी देखेंगे ।

वारात गन्तव्य स्थान के समीप पहुँची । उस समय बभ्रु राजीमती श्रत्यन्त व्यग्रमन से वर-दर्शन की प्रतीक्षा में गवाक्ष में बैठी थी । राजीमती अनुपम, अतिशय सुन्दरी थी । उसके मोन्दर्य पर देववाजायें भी ईर्ष्या कर्नी थीं और इस समय तो उसके आनन्दनर्तिक उल्लास ने उसकी रूप माधुरी को मद्स्रग्गुता कर दिया था । अनुपम दण्डुन से महंगा राजकुमारी विना मागण में दूख गई ।

दीक्षा एवं पारणा :

भगवान् अरिष्टनेमि के योग-कर्म दीक्षा ली रहे थे । निरस्त होकर आत्म-नन्द्याज के लिये संन्यास ग्रहण करने की अभिलाषा से व्यथित करने लगे । लोका-त्तिक देवों की प्रार्थना से वे वर्षादान की ओर प्रवृत्त हुए । अपार धन दान कर के मानकों को संतुष्ट करते रहे । वर्ष भर दान करने के उपरांत भगवान् श्रावण शुक्ला छट्ठ के दिन पूर्वान्ह के समय उत्तराङ्गुलि दिविका में बैठकर द्वारिका नगरी के मध्य में होकर रेवत नामक उद्यान में पहुँचे 13 वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे स्वयं अपने आभूषण उतारते हैं और पंचमुष्टि लोच करते हैं 14

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्वा०, पृ. १२-११३ विस्तार के लिये देखें ।

(१) त्रिपट्टि शलाका०, पर्व आठ सर्ग ९

(२) उत्तराध्ययन, २२ वां अध्याय

(३) उत्तरपुराण, (४) हरिवंशपुराण, (५) भवमायना,

(६) चउपन, महापुरिसचरियं ।

(७) तीर्थंकर चरित्र, भाग २ पृ० ५८४-५९१

(८) भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. ८६ से-९४

(९) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ. ५२ से ६०

२. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. ९४

३. समयार्वांग सूत्र, १५७-१७

४. उत्तराध्ययन, २२।२४

राजीमती की दीक्षा :

राजीमती के अस्वमेज में से बिना क उपास्य हुए भगवान् श्री अरिष्ट-
नेमि पश्य हैं तिरनेमि मोक्ष पर विजय प्राप्त करती है । ये निर्मोक्षी बन चुके
हैं । मुझे विचार है जो मोक्ष के समारण में कंगी हुई हैं । अब मेरे लिये यह
सचिंत है कि इस संसार को त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर लूं । 12

मेरा हृदय संकल्प करके उसने कंगी में संनरे हुए भ्रमर-सदृश्य काले केशों को
उगाड़ दाला । यह सर्व दुन्दियों को जीतकर दीक्षा के लिये तैयार हो गई ।
श्रीकृष्ण ने राजीमती को आशीर्वाद दिया । "हे कन्या ! इस भयंकर संसार
सागर में तू शीघ्र तर ।" राजीमती ने भगवान् श्री अरिष्टनेमि के पास अनेक
राजकन्याओं के साथ दीक्षा ग्रहण की । रथनेमि ने भी उस समय भगवान् के
पास संयम ग्रहण किया । 13

रथनेमि को प्रतिबोध :

रथनेमि भगवान् श्री अरिष्टनेमि के लघु भ्राता थे और उनके तोरण से
लौटने के बाद रथनेमि राजीमती पर मोहित हो गये थे । जब राजीमती ने
प्रश्रय्या ग्रहण की तब भगवान् रेवताचल पर्वत पर विराजमान थे । अतः माध्वी
राजीमती अनेक साध्वियों के साथ भगवान् को वन्दन करने के लिये रेवतगिरि
की ओर चल पड़ी । अकस्मात् आकाश में उमड़ घुमड़ कर घटायें घिर आईं

१. त्रिपष्टि., भा. ६।३७५-३७६

२. उत्तराष्टपयन-२२।५.६

३. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. १११

भगवच्चरणों में पहुँच कर वंदन किया और तप संयम का साधन करते हुए केवल ज्ञान की प्राप्ति करली और अन्त में निर्वाण प्राप्त किया । १

भविष्य कथन :

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए प्रभु द्वारिका पधारे । श्रीकृष्ण भगवान की सेवा में पधारे । श्रीकृष्ण ने अपने मन की सहज जिज्ञासा अभिव्यक्त करते हुए द्वारिकानगरी के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि यह स्वर्गोपम नगरी ऐसी ही बनी रहेगी अथवा विनाश होगा ?

भगवान् ने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि शीघ्र ही यह सुन्दर नगरी मदिरा, अग्नि और ऋषि इन तीन कारणों से नष्ट होगी ।

श्रीकृष्णा को नितामग्न देखकर प्रभु ने इस विनाश से बचने का उपाय भी बताया । उन्होंने कहा कि कुछ उपाय हैं, जिससे नगरी को अमर तो नहीं बनाया जा सकता किन्तु उसकी आयु अवश्य ही बढ़ाई जा सकती है । ये उपाय ऐसे हैं, जो सभी नागरिकों को अपनाने होंगे । संकट का पूर्वा विवेचन करते हुए भगवान् ने कहा कि कुछ मय प्रेमी यादवकुमार द्वैपायन ऋषि के साथ जमदग्नि ऋषि के पास जाकर प्रार्थना करेंगे । ऋषि प्रोधावेश में द्वारिका को भस्म करने की प्रतिज्ञा पूरी करेंगे । काल की प्राप्ति कर ऋषि अग्निदेव बनेंगे और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे । अर्थात् यदि नागरिक मांस-मदिरा का सर्वथा त्याग करें और तप करने लगे हों तब ही मृत्यु का सम्भव है ।

पूर्वभव :

पूर्वभव की साधना के फलस्वरूप ही भगवान् श्री पार्श्वनाथ ने तीर्थंकर पद की योग्यता का अर्जन किया । भगवान् श्री पार्श्वनाथ का साधनारम्भ काल दशमव पूर्व से बताया गया है जिनका विस्तृत विवरण चउपन्न महापुरिम चरियम्, त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र, आदि ग्रंथों में बताया गया है । भगवान् के जो दशमव बताये गये हैं उनके नाम इस प्रकार मिलते हैं—

१. मरुभूति और कमठ का भव
२. हाथी का भव
३. सहस्रवार देव लोक का भव
४. किरणदेव विद्याधर का भव
५. अच्युत देवलोक का भव
६. वज्रनाभ का भव
७. वैशेरा देवलोक का भव
८. मर्त्यनाथ का भव
९. प्राण देवलोक का भव
१०. पार्श्वनाथ का भव ।

२५. विश्वज्योति भगवान् महानीरस्तामी

(१३२ वि०)

जन्मकाल भगवतीपति काल में जो देवों में एक पतिव्रत शीर्षक भगवान् पति-
नीरस्तामी हुए । वेदमन्त्रीपति भगवान् पापबन्धन के २५० वर्षों पश्चात्
श्रीम ईसा पूर्व सन् ३५० में आज के लगभग अर्द्ध-शताब्दी पूर्व भगवान् महा-
नीरस्तामी ने एक भाग्य भूमि पर अवतरित होकर विश्वाना-कामान्य को
कहवाना मार्ग बताया था ।

भगवान् महानीरस्तामी के जन्म से पूर्व आर्यावर्ष की स्थिति अति-श-
नीम थी । गर्म के नाम पर अनेक विवेकहीन क्रियाकारण आरम्भ हो चुके थे ।
संश्लेष्यशय्या इत्यादि विरुद्ध हो चुकी थी कि अपने आपको स्वयं वर्ण का मानने
माने दूसरे वर्ण के व्यक्तियों को हीन समझते थे । ब्राह्मणों का पारसों और योन-
वाता था । मग्न के नाम पर अनेक प्रकार की हिंसाएँ हो रही थीं । वैवाहिक
मन्त्रित दिन प्रतिदिन क्षीण होती चली जा रही थी । पापघ्न, शौच और वाह्या-
दम्बर बढ़ता ही जा रहा था । गुण-पूजा का स्थान व्यभिच-पूजा ने ग्रहण
कर लिया था । स्त्री तथा दूद्रों को अधिकारों से वंचित कर दिया गया था । स्त्री
को अवला मानकर उस पर मनमाने अत्याचार हो रहे थे । उन्हें न तो धार्मिक
और न ही सामाजिक क्षेत्र में स्वतंत्रता थी । दूद्र सेवा का पवित्र कार्य करते
थे फिर भी उन्हें दीन-हीन समझा जाता था । उन पर असीम अत्याचार होते
थे । यदि भूल से भी कोई स्त्री या दूद्र वेदमन्त्र सुन लेता था तो उसके कानों
में गर्म शीशा भरवा दिया जाता था । यद्यपि भगवान् पापबन्धनाय की २५० वर्ष
पुरानी परम्परा उस समय किसी न किसी प्रकार चल रही थी किन्तु कुशल
एवं सहायत नेतृत्व के अभाव में उसमें तत्कालीन हिंसा-काण्ड का विरोध करने
की क्षमता नहीं थी । स्वयं उस परम्परा के अनुयायी भी अपने कर्तव्यपालन में
मिथिल हो गये थे ।

१६६ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

तद्विधियां किसी एक ही जन्म की अजंजाएँ न होकर जन्म-जन्मान्तरों के मुक्तियों और सुसंस्कारों के समुच्चय का रूप होती है। भगवान् महावीर भी इस सिद्धांत के अपवाद नहीं थे। जब उनका जीव अनेक पूर्व जन्मों के पूर्व नगहार के भव में था, तभी श्रेष्ठ संस्कारों का अंकुरण उनमें हो गया था।

पूर्व भव :

भगवान् महावीर के पूर्वभवों का उल्लेख द्वाैताम्बर एवं दिगम्बर द्वाै दोनोँ ही परम्पराओं में मिलता है। अन्तर यह है कि द्वाैताम्बर परम्परा२ में भगवान् के सत्ताइस पूर्वभवों का और दिगम्बर परम्परा३ में तीसरा पूर्वभवों का विवरण मिलता है। सर्वसामान्य की जानकारी के लिये भगवान् के भवों की जानकारी निम्नानुसार है :—

द्वाैताम्बर परम्परा

दिगम्बर परम्परा

मासिक संलेखना करके आगु पूर्ण किया । १ इसके बाद उनका जीव प्राणत-
देवलोक के पुष्योत्तरावतंराक विमान में बीस सागर की स्थिति वाला देव
हुआ । २'

जन्म माता-पिता :

ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में एक सदाचारी ब्राह्मण ऋषभदत्त रहता था । उसकी
पत्नी का नाम देवानन्दा था । प्राणत-देवलोक की अवधि पूर्ण कर नयसार का
जीव वहाँ से चलकर ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में आपाढ़ शुक्ला ६ उत्तरा
फाल्गुनी नक्षत्र के योग से स्थिर हो गया । उसी रात को देवानन्दा ने चौदह
महा-फलदायी स्वप्न देखे और उनकी चर्चा ऋषभदत्त से की । स्वप्नफल पर
विचार करने के उपरान्त उसने कहा कि देवानन्दा तुम्हें पुण्यशाली, लोक पूज्य,
विद्वान् और महान् पराक्रमी पुत्ररत्न की प्राप्ति होने वाली है । यह सुनकर
देवानन्दा आनन्दविभोर हो गई और पूर्ण सावधानीपूर्वक गर्भ का पालन
करने लगी ।

देवाधिप शकेन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से यह ज्ञात कर लिया कि भगवान्
महावीर ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में अवस्थित हो चुके हैं तो उन्होंने आसन
से उठकर भगवान् की वन्दना की । तदुपरान्त इन्द्र के मन में विचार उत्पन्न
हुआ कि परम्परानुसार तीर्थकरों का जन्म पराक्रमी और उच्चवंशों में ही होता
रहा है, उन्होंने कभी भी क्षत्रियेत्तर कुल में जन्म नहीं लिया । भगवान्
महावीर ने ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में जन्म लिया यह एक आश्चर्यजनक तो
ही, अनहोनी बात भी है । इन्द्र ने निर्णय लिया कि ब्राह्मण कुल से निकाल-
कर मैं उनका साहरण उच्च और प्रतापी वंश में कराऊँ । यह विचार कर
इन्द्र ने हरिरोगमेपी को आदेश दिया कि भगवान् को देवानन्दा के गर्भ से
निकालकर राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ में साहरण किया जावे ।

उस समय रानी त्रिशलादेवी भी गर्भवती थी । हरिरोगमेपी ने अत्यन्त
कीशल के साथ दोनों के गर्भों में पारस्परिक परिवर्तन कर दिया । उस समय
तक भगवान् ने देवानन्दा के गर्भ में ८२ रात्रियों का समय व्यतीत कर लिया

१. (१) आब० पूरि०, २३५, (२) त्रिपट्टि., १०।१।२२६

२. आब० पू०, २३५

भगवान् के गर्भ में गतिशील होने से माना को गर्भ की कुशलता का निश्चय हो गया और पुनः सर्वत्र गर्भ की लहर फैल गई । माना प्रगल्भ मन से और अधिक संयमपूर्ण आहार-विहार के साथ गर्भ का पालन करने लगी । नौ मास और साढ़े सात दिन पूरे होने पर नैत्र शुक्ला त्रयोदशी की अर्द्धरात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में (३० मार्च ५६६ ई०पू०) त्रियम्बा देवी ने एक परम तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । नवजात शिशु एक सहस्र श्राट लक्षणों और कुन्दनवर्णी शरीर वाला था । भगवान् के जन्म से तीनों लोकों में अनुपम आभा फैल गई और घोर यातनाओं को सहने वाले नारकीय जीवों को भी क्षणभर के लिये सुखानुभूति हुई । ६४ इन्द्रों ने मेरुपर्वत पर भगवान् का जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया । भगवान् के जन्म के प्रभाव से ही सम्पूर्ण राज्य में श्री समृद्धि होने लगी ।

पुत्र जन्म की खुशी में महाराज मिन्दाथं ने राज्य के बंदियों को कारागार से मुक्त किया याचकों और सेवकों को मुक्तहस्त से प्रीतिदान दिया । दस दिन तक बड़े हर्षोल्लास के साथ भगवान् का जन्मोत्सव मनाया गया । समस्त नगर में बहुत दिनों तक आमोद-प्रमोद का वातावरण छाया रहा । १

१. जन्म एवं माता-पिता विषय जानकारी के लिये देखें :-

(१) चौबीस तीर्थंकर : एक पर्यवेक्षण, पृ. १३३ से १३५

(२) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ. २०५ से २१४

(३) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, पृ. १६७ से १६६ एवं २१६ से २२३ इसके अतिरिक्त :-

(१) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित, पृ. १० एवं अन्य ।

(२) कल्पसूत्र (३) आवश्यक क्षुण्णि, (४) चउपन्न महा.,

(५) महावीर चरित्रं-गुणचन्द्र (६) आचारांग सूत्र आदि आदि

भयंकर विषघर को देखकर अन्य बालक द्रघर-उघर भाग खड़े हुए किन्तु भगवान् महावीर अविचलित ही बने रहे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने भागने वाले साथियों से कहा कि तुम लोग क्यों भागते हो? यह क्षुद्र प्राणी क्या विगाड़ सकता है, इसके तो एक ही मुँह है, हमारे पास दो हाथ, दो पांव, एक मुख, मस्तिष्क एवं बुद्धि है। आओ इसे पकड़कर दूर फेंक दें।

भगवान् का ऐसा कथन सुनकर सभी बालक एक साथ कह उठे कि ऐसी गलती मत करना। इसके छूना मत। इसके काटने से आदमी मर जाता है। इतना कहकर सब बालक वहाँ से भाग गये। भगवान् महावीर ने निःशंक भाव से सर्प को पकड़ा और एक रस्सी की भाँति उठाकर एक ओर रख दिया। इस पर जो बालक भाग गये थे वे पुनः आ गये।

तिन्दूपक :

महावीर द्वारा सर्प को हटाये जाने पर पुनः सभी बालक वहाँ आ गये और तिन्दूपक खेल खेलने लगे। यह खेल दो दो बालकों के जोड़े बनाकर मिला जाता है। दो बालक एक साथ लक्षित वृक्ष की ओर दौड़ते हैं और दोनों में से जो बालक वृक्ष को पहले छू लेता है, उसे विजयी माना जाता है। इस खेल में विजयी बालक पराजित बालक पर सवार होकर मूल स्थान पर आता है। परीक्षा देव भी बालक का रूप बनाकर खेल की टोली में सम्मिलित हो गया और खेलने लगा। महावीर ने उसे दौड़ में पराजित कर वृक्ष को छू लिया। तब नियमानुसार पराजित बालक को सवारी के रूप में उपस्थित होना पड़ा। महावीर उग पर आसूढ़ होकर नियत स्थान पर आने लगे तो देव ने उनको भयभीत करने और अपहरण करने के लिये सात ताड़ के बगवत ऊँचा और भयावह शरीर बनाकर डराना प्रारम्भ किया। इस अजीब दृश्य को देखकर सभी बालक घबरा गये। परन्तु महावीर पूर्ववत् निर्भय बने रहे। उन्होंने जल-बल में देखा कि यह कोई मायार्थी जीव हमारे बचन करना चाहता है। ऐसा सोचकर उन्होंने उगरी पीठ पर साहसपूर्वक तैरा मुष्टि-प्रहार किया कि

मिथिला है और भावी तीर्थंकर को बीज रूप में उपस्थिति का जितने आमान हुआ करता था । १

प्रस्तावस्था :

राज्यपाल पुरां कर जब वर्धमान युवक हुए तब राजा सिद्धायं और रानी मिथिला ने इनके मित्रों के माध्यम से विवाह की बात चलाई । राजकुमार वर्धमान सह्य विरक्त होने के कारण भोग-जीवन जीना नहीं चाहते थे । अतः पहले तो उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपने मित्रों से कहा कि विवाह मोह-बुद्धि का कारण होने से भव-ग्रमण का हेतु है । फिर भोग में रतन का भ्रम भी भूल जाने की वस्तु नहीं है । माता पिता को मेरे विरोध का दुःख न हो इसलिए बीजा लेने के लिये उद्युक्त होते हुए भी मैं अब रक्त संश्लेष नहीं हो पा रहा हूँ ।

चित्त सख वर्धमान और उनके मित्रों में परस्पर इस प्रकार की बात हो रही थी कि रानी मिथिला देवी वहाँ आ गई । वर्धमान ने खड़े होकर माता के लिये जगदरभाङ्क प्रणम किया । माता ने कहा "वर्धमान ! मैं जानती हूँ कि तुम भोगों से विरक्त हो, फिर भी हमारी प्रवचन इच्छा है कि तुम योग्य राज-माता से सम्बिम्बण करो ।"

मिलता है और भावी तीर्थंकर को बीज रूप में उपस्थिति का जिनसे आभास हुआ करता था । १

गृहस्थावस्था :

बाल्यकाल पूर्ण कर जब वर्धमान युवक हुए तब राजा सिद्धायं और रानी त्रिशला ने इनके मित्रों के माध्यम से विवाह की बात चलाई । राजकुमार वर्धमान सहज विरक्त होने के कारण भोग-जीवन जीना नहीं चाहते थे । अतः पहले तो उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपने मित्रों में कहा कि विवाह मोह-बुद्धि का कारण होने से भव-भ्रमण का हेतु है । फिर भोग में रोग का भय भी भूल जाने की वस्तु नहीं है । माता पिता को मेरे वियोग का दुःख न हो इसलिये दीक्षा लेने के लिये उत्सुक होते हुए भी मैं अब तक दीक्षित नहीं हो पा रहा हूँ ।

जिस समय वर्धमान और उनके मित्रों में परस्पर इस प्रकार की बात हो रही थी कि माता त्रिशला देवी वहाँ आ गई । वर्धमान ने खड़े होकर माता के प्रति आदरभाव प्रकट किया । माता ने कहा “वर्धमान ! मैं जानती हूँ कि तुम भोगों में विरक्त हो, फिर भी हमारी प्रवृत्ति है कि तुम योग्य राज-मन्या से पाणिग्रहण करो ।”

अन्ततः माता-पिता के आप्रह् के सम्मुख वर्धमान महावीर को भुज्जना पर्व और वसंतपुर के महागामन्त समरवीर की प्रियपुत्री यशोदा के साथ शुभ भुज्जने में पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ ।

उसके काल में ही माता के अत्यधिक स्नेह को देखकर वर्धमान ने अपिग्रह कर रखा था कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, वे दीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे ।

बैठकर पशुबन्ध आहार का त्याग कर, मंत्रारा यज्ञ किया और फिर अपग्निम मरणांतिक सन्नेसना से भूषित शरीर वाले कान के समय में कान कर अच्युत कल्प (बारहवें स्वर्ग) में देवस्वर्ग में उत्पन्न हुए। वे स्वर्ग में ज्यकार महाविदेह में उत्पन्न होंगे और सिद्धि प्राप्त करेंगे। १

गृहस्थ-योगी दीक्षा की तैयारी :

माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त दीक्षाव्रत ग्रंथीकार करने की भावना चलवती हो गई। अब उन्हें अपने मार्ग में किंगी भी प्रकार की बाधा दिखाई नहीं दे रही थी किन्तु फिर भी उन्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन से अनुमति प्राप्त करनी थी। नन्दिवर्धन अब उनके लिये पिता के समान थे। नन्दिवर्धन का उन पर स्नेह भी अगाध था। भगवान् ने दीक्षा ग्रहण करने का सब विचार किया और मर्यादा के अनुरूप अपने अग्रज से अनुमति की याचना की। माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण नन्दिवर्धन भी इस समय दुःखी थे। वे अपने आपको अनाथित-सा अनुभव कर रहे थे। ऐसी स्थिति में जब महावीर ने दीक्षा की अनुमति मांगी तो उनके हृदय को भीषण आघात लगा। नन्दिवर्धन ने उनसे कहा कि इस असहाय अवस्था में मुझे तुमसे बड़ा सहारा मिल रहा है। तुम भी यदि मुझे एकाकी छोड़ गये तो मेरा और राज्य का क्या भविष्य होगा? इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कदाचित् मेरा जीवन रहना ही असम्भव हो जायगा। अभी तुम गृह त्याग मत करो। इसी में हम सबका हित है। इस हादिक अभिव्यक्ति ने भगवान् महावीर के निर्मल मन को द्रवित कर दिया और वे अपने आग्रह की पुनरावृत्ति नहीं कर सके। नन्दिवर्धन के अश्रुप्रवाह में वर्धमान की मानसिक दृढ़ता बड़ निकली और उन्होंने अपने भावी कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्वर्गित रखने का निश्चय कर लिया।

ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की इच्छा के अनुरूप महावीर गृहस्थ तो बने रहे, किन्तु उनकी संसार के प्रति उदासीनता और गहरी होती गयी। भगवान् महावीर ने इस समय राजप्रासाद और राजपरिवार में रहते हुए भी एक योगी की भांति जीवन व्यतीत किया और अपनी अद्भुत संयम-गरिमा का परिचय

लोकान्तिक देव भगवान् को नमस्कार करके स्वस्थान लौट गये ।

अब नन्दिनवर्धन भी अपने प्रिय वन्धु को मरने का आग्रह नहीं कर सकते थे । जैसे जैसे विद्योग का समय निकट आ रहा था, वैसे वैसे ही उनकी उदासी भी बढ़ती जा रही थी । उन्होंने विवश होकर अपने भक्तों को महाभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान की । भगवान् का निष्क्रमण का अभिप्राय जानकर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक जाति के देव अपनी ऋद्धि सहित अभियकुंड आये । प्रथम स्वर्ग के स्वामी शक्रेन्द्र ने वैक्रिय दक्षि से एक विशाल स्वर्ण-मणि एवं रत्नजड़ित देवच्छन्दक (भव्य मण्डप जिसके मध्य में पीठिका बनाई हो) बनाया जो परम मनोहर, सुंदर एवं दर्शनीय था । उसके मध्य में एक भव्य सिंहासन रखा जो पादपीठिका सहित था । तत्पश्चात् इन्द्र भगवान् के निकट आया और भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया । नमस्कार करने के उपरांत भगवान् को लेकर देवच्छन्दक में आया और भगवान् को पूर्व दिशा की ओर सिंहासन पर बिठाया । फिर घातपाक और सहस्रपाक तेल से भगवान् का मर्दन किया । शुद्ध एवं सुगन्धित जल से स्नान कराया । तत्पश्चात् गंधकापायिक वस्त्र (लाल रंग का सुगन्धित श्रंगपोछना) से शरीर पोंछा गया और लाशों के मूल्य वाले शीतल रक्तगोम्रीय चन्दन का विलेपन किया । फिर चतुर कलाकारों से बनवाया हुआ और नासिका की वायु से उड़ने वाला मूल्यवान, मनोहर अत्यन्त कोमल तथा सोने के तारों से जड़ित, हंस के समान श्वेत ऐसा वस्त्र-युगल पहिनाया और हार, अर्धहार एकावलि आदि हार, कटि सूत्र, मुकुट आदि आभूषण पहिनाये । विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से अंग सजाया । इसके बाद इन्द्र ने दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके एक बड़ी चन्द्रप्रभा नामक शिविका का निर्माण किया । वह शिविका भी दैविक विशेषताओं से युक्त अत्यन्त मनोहर एवं दर्शनीय थी । शिविका के मध्य में रत्नजड़ित भव्य सिंहासन पादपीठिका युक्त स्थापित किया और उस पर भगवान् को बैठाया । प्रभु के पास दोनों ओर शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र खड़े रहकर चंवर बुलाने लगे । पहले शिविका मनुष्यों ने उठाई, फिर देवों ने । शिविका के आगे देवों द्वारा अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र बजाये जाने लगे । निष्क्रमण यात्रा बढ़ने लगी और इस प्रकार जय जयकार होने लगा—

“भगवन् ! आपकी जय हो, विजय हो । आपका कल्याण हो । आप जान

१८२ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

गुहृतं था, चतुर्यं प्रहर था तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था । सिद्धों को नमस्कार करके भगवान् ने सामायिक चरित्र स्वीकार किया । जिस समय प्रभु ने सामायिक प्रतिज्ञा स्वीकार की उस समय देव और मानव सभी चित्रलिपित से रह गये ।

देवेन्द्र ने भगवान् को देवदूष्य (दिव्य वस्त्र) प्रदान किया । भगवान् ने अपना जीत आचार समझकर उसे वामस्कंध पर धारण किया । आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यक चूर्ण आदि में एक देवदूष्य वस्त्र लेकर दीक्षा लेने का उल्लेख है । भगवान् महावीर ने एकाकी दीक्षा ग्रहण की थी ।

दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों में देवदूष्य वस्त्र के साथ संयम ग्रहण का उल्लेख नहीं है ।

दीक्षा लेते ही महावीर को मनः पर्यवज्ञान हुआ । जिससे ढाई द्वीप और दो समुद्र तट के समनस्क प्राणियों के मनोमत भावों को जानने लगे थे ।

अभिग्रह :



उनका साधक जीवन बड़ा ही रोमांचक, प्रेरक और शौर्यपूर्ण रहा है। आचार्य भद्रबाहु ने इसीलिये तो इस सत्य को मुक्त मन से उद्धृत किया है—“एक ओर तेईस तीर्थंकरों के साधक जीवन के कष्ट और एक ओर अकेले महावीर के। तेईस तीर्थंकरों की तुलना में भी महावीर का जीवन अधिक कष्ट प्रवण, उपसर्गमय एवं तप प्रधान रहा” ११

भगवान् के साधनाकाल में उन्हें जो दैविक, पाशविक एवं मानुषिक उपसर्ग, कष्ट एवं परीपहं उपस्थित हुए और उन प्रसंगों पर उनकी श्रन्तःकरण की करुणा, कोमलता, कठोर तितिक्षा, दृढ़ मनोबल और अविचल ध्यान समाधि की जो अपूर्व विजय हुई है—उसका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार दिया जा रहा है।

क्षमामूर्ति महावीर-गोपालक प्रसंग २ :

जिस समय भगवान् कुमाराग्राम के बाहर स्थाणु की भांति अचल ध्यानस्थ खड़े थे, उस समय एक ग्वाला अपने बैलों को लिये वहाँ भाया। गो दोहन का समय हो रहा था। ग्वाले को गाँव में जाना था। पर उसके सामने समस्या थी कि बैलों को किसे संभलाए? उसने इधर-उधर दृष्टि फँलाकर देखा, एक श्रमण ध्यान में स्थिर खड़ा है। ग्वाले ने निकट आकर कहा—“जरा बैलों का ध्यान रखना, मैं शीघ्र ही गाँवें दुहकर आता हूँ।”

ग्वाला चला गया। महाश्रमण अपने ध्यान में तल्लीन थे। समाधि में स्थिर थे। जिन्होंने अपने शरीर की रखवाली त्याग दी वे भला किसके बैलों की रखवाली करते ?

(१) तीर्थंकर महावीर, श्री मधुकर मुनि एवं अन्य, पृ० ५६

(२) १. त्रिपष्टि० १०।३

२. तीर्थंकर महावीर पृ० ६४-६४

३. ऐति० काल के तीन तीर्थंकर पृ० २२६-२२७

४. भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, पृ० २६२-२६३

५. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० १४८-१५०

६. तीर्थंकर चरित्र, भाग ३ पृ० १४७-१४८

७. व्यावश्यक ज्ञान, पृ० २६६

८. महावीर चरित्र, ५।१४४

तनिक भी पीछे नहीं रहेंगे। प्रभु ! आप आज्ञा दें तो मैं आपके साथ रहकर इन बाधाओं को दूर करता चलूँ।

भगवान् को इसकी आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी साधना स्वाश्रयी है। अपने पुरुपार्थ से ही ज्ञान व मोक्ष सुलभ हो सकता है। कोई भी अन्य इसमें सहायक नहीं हो सकता। आत्मवल ही साधक का एकमात्र आश्रय होता है। भगवान् ने इस सिद्धांत का आजीवन निर्वाह किया।

तापस के आश्रम में :

साधक महावीर विहार करते करते एक समय मोराक ग्राम के समीप पहुंचे, जहाँ तापसों का एक आश्रम था। वृद्धजत इस आश्रम के कुलपति थे और ये भगवान् के पिता के मित्र थे। कुलपतिजी ने भगवान् से आग्रह किया कि वे इसी आश्रम में चातुर्मास व्यतीत करें। भगवान् ने भी इस आग्रह को स्वीकार कर लिया और वे एक पर्ण कुटिया में खड़े होकर ध्यानावस्थित हो गये।

कुटियाएं घास-फूस से निर्मित थीं और सभी तापसों की अलग अलग कुटियाएं थीं। वर्षा का प्रारम्भ भली प्रकार नहीं हो पाया था और घास भी नहीं उग पाई थी। अतः गायें आश्रम में घुसकर इन कुटियाओं की घास चर लिया करती थीं। अन्य तापस तो गायों को भगाकर अपनी कुटियाओं की रक्षा कर लिया करते थे किन्तु ध्यानमग्न रहने वाले महावीर को इतना अवकाश कहीं ? वे तो जैसे भी समत्व से परे हो गये थे। ये अन्य तापस अपनी कुटिया के साथ साथ महावीर की कुटिया की रक्षा भी कर लिया करते थे।

एक अवसर पर जब सभी तापस आश्रम से बाहर कहीं गये हुए थे, तो गायों ने पीछे से सभी कुटिया चोंचकर दिया। जब तापस लौटकर आश्रम में आये और आश्रम की दुर्गन्धा देखी तो बहुत दुःखी हुए। वे भगवान् पर भी क्रोधित हुए कि वे इतनी भी चिन्ता नहीं रख सके। तापस क्रोध में आकर भगवान् की कुटिया की ओर चले। वहाँ उन्होंने जो देखा तो अचम्बित रह गये। उनकी कुटिया की गायों घास भी गायें चर गई थीं और वे अर्ध भी ध्यान में लीन क्यों के स्थिति में थे। इस घोर और अत्यन्त तापस्या के कारण उनकी कुटिया की ज्वाला प्रायः खत्म हो उठी। तापसों ने कुटिया

यक्ष का उपद्रव :

विचरणशील साधक भगवान् महावीर अस्थिक ग्राम में पहुँचे । ग्राम के पास ही एक प्राचीन और ध्वस्त मंदिर था, जिसमें यक्ष बाधा बनी रहती है— इस आशय की सूचना महावीर को भी प्राप्त हो गयी । ग्रामवासियों ने यह सूचना देते हुए अनुरोध किया कि वे वहाँ विश्राम न करें । वास्तव में वह मन्दिर मुनसान और बहुत ही डरावना था । रात्रि में कोई भी यहाँ ठहरता नहीं था, यदि कोई दुस्साहस कर बैठता तो वह जीवित नहीं रह पाता था ।

भगवान् ने तो साधना के लिये सुरक्षित स्थान चुनने का व्रत धारण किया था । मन में सर्वथा निर्भीक ही थे । अतः उन्होंने उसी मंदिर को अपना साधना-स्थल बनाया । वे वहाँ खड़े होकर ध्यानस्थ हो गये । ऐसे निदर, साहसी, व्रतपालक और अटल निदचयी थे—भगवान् महावीर । वह भाद्रवा-सुदी ५ का दिन था ।

रात्रि के घोर अन्धकार में अत्यन्त भीषण अट्टहास उस मंदिर में गूजने लगा । भयानकता ममस्त वातावरण में छा गयी, किन्तु भगवान् महावीर निरचल ध्यानमग्न ही रहे । यक्ष को अपने पराक्रम की यह उपेक्षा असह्य मगी । यह क्रुद्ध हो उठा और विकराल हाथी, हिंस्र सिंह, विशालकाय दैत्य, भयंकर विषधर आदि विविध रूप धारण कर भगवान् को घातकित करने के प्रयाग करता रहा । अनेक प्रकार से भगवान् को उसने असह्य, घोर काट पट्टचाये । साधना में अटल महावीर रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए । वे अपनी साधना में तो क्या विघ्न पड़ने देते, उन्होंने आह-कराह तक नहीं की ।

जब सर्वाधिक प्रयत्न करके घोर अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करके भी यक्ष शून्यगति भगवान् को किसी प्रकार कोई हानि नहीं पहुँचा सका, तो यह पराजित होकर सरसा का अनुभव करने लगा । यह विचार करने लगा कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है—निदचय ही महामानव है । यह धारणा करने ही बड़ अपनी समस्त श्रिमावृत्ति का त्याग कर भगवान् के चरणों में नमन करने लगा और अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी ।

भगवान् ने क्षमाधि माँगी । उनके नेत्रों में स्नेह और कृपा टपक रही थी । यक्ष को प्रतिबोध दिया जिससे उसके अन्तरस्था शून्य गये, मन का भय

चण्डकीशिक को प्रतिबोध

यह प्रसंग हिंसा पर अहिंसा की विजय का प्रतीक है। एक बार भगवान् को कनकखल से श्वेताम्बी पहुंनना था। जिसके लिये दो मार्ग थे। एक मार्ग लम्बा होते हुए सुरक्षित था और सामान्यतः उसी का उपयोग किया जाता था। दूसरा मार्ग यद्यपि लघु था तथापि बड़ा भयंकर था इस कारण इस मार्ग से कोई भी यात्रा नहीं करता था। इस मार्ग में एक घना वन था, जिसमें एक—अतिभयंकर विषधर चण्डकीशिक नामक नाग का निवास था जो 'दृष्टिविष' सर्व था। यह मात्र अपनी दृष्टि डाल कर ही जीवों को उस लिया करता था। इस नाग के विष की विकरालता के विषय में यह प्रसिद्ध था कि उसकी फूफकार मात्र से उस वन के समस्त जीव जन्तु तो मर ही गये हैं, वरन् ममस्त वनस्पति भी जल गई है। इससे इस प्रचण्ड नाग का अत्यधिक आतंक था।

भगवान् ने श्वेताम्बी जाने के लिये इसी छोटे भयंकर मार्ग का चुनाव किया। कनकखलवासियों ने भगवान् को उस भयंकर विपत्ति से अवगत कराया और इस मार्ग से न जाने का सचिनय अनुरोध भी किया किन्तु भगवान् का निश्चय तो अटल था। वे इसी मार्ग पर निर्भीकतापूर्वक बढ़ गये। भयंकर विष को मानो अमृत का प्रवाह परास्त करने के लिये सोत्साह बढ़ रहा हो।

भगवान् सीधे जाकर चण्डकीशिक की चांवी के समीप ही खड़े होकर ध्यानमग्न हो गये। कष्ट और संकट की निमंत्रित करने का और कोई अन्य उदाहरण इसकी समानता नहीं कर सकता? घोर विष को अमृत बना देने की शुभाकांक्षा ही भगवान् की अन्तःप्रेरणा थी जिसके कारण इस भयप्रद स्थल पर भी वे अविचलित रूप से ध्यानमग्न बने रहे।

अपने भयानक विष में वातावरण को दूषित करता हुआ चण्डकीशिक भ्रूम से बाहर निकल आया और अपने प्रतिद्वंद्वी मानव को देखकर वह हिंसा के

उसने अष्टम स्वर्ग की प्राप्ति की । भगवान् के पदार्पण से उसका उद्धार हो गया । १

नीका-रोहण

चण्डकीशिक का उद्धार कर भगवान् विहार करते हुए उत्तर वाचाला पधारे । वहाँ उनका नाग सेन के यहाँ पन्द्रह दिन के उपवास का परमान्न से पारणा हुआ । फिर वहाँ से विहार कर भगवान् श्वेताम्बिका नगरी पधारे । वहाँ के राजा प्रदेशी ने भगवान् का खूब भावभीना सत्कार किया ।

श्वेताम्बिका से विहार कर भगवान् सुरभिपुर की ओर चले । बीच में गंगा नदी बह रही थी । अतः गंगा पार करने के लिये भगवान् महावीर को नीका में बैठना पड़ा । ज्यों ही नीका चली त्यों ही दाहिनी ओर से उल्लू के शब्द सुनाई दिये । उनको सुनकर नीका पर सवार नेमिलनिमित्तज्ञ ने कहा— "बड़ा संकट आने वाला है, किन्तु इस महापुरुष के प्रबल पुण्य से हम सब बच जायेंगे ।" थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही आंधी के प्रबल भोंकों में पड़कर नीका भँवर में पड़ गई । कहा जाता है कि त्रिपृष्ठ के भव में महावीर ने जिस सिंह को मारा था उसी के जीव ने बैर-भाव के कारण सुदंष्ट्र देव के रूप से गंगा में महावीर के नीकारोहण के बाद तूफान उत्पन्न किया । समस्त यात्री घबरा उठे किन्तु भगवान् महावीर निर्भय थे । अन्त में भगवान् की कृपा से आंधी रुकी और नाग गंगा के किनारे लगी । कम्बल और दाम्बल नामक नागकुमारों ने दम उभयगर्भ के निवारण में भगवान् की सेवा की । २

(१) १. त्रिपृष्ठ, १०१३

२. आश्व० भूर्जि प्रथम भाग, पृ० २७९.

३. आश्व० त्रिपृ०, का० ४६१७

४. त्रिपृ० काव्य के तीन तीर्थंकर, पृ० २३५ से २३८

५. तीर्थंकर महावीर, पृ० ७३ से ७७

६. तीर्थंकर तीर्थंकर : एक पर्व०, पृ० १४५-१४६

७. त्रिपृ० काव्य के तीन तीर्थंकर, पृ० २३८

८. आश्व० भूर्जि, पूर्वभाग पृ० २८०-२८१

भगवान् महावीर पर भला दसका नया प्रभाव होता ? उनके निरत में गोणालक के प्रति कोई दुर्विचार भी कभी नहीं आया । भगवान् वन में विहाररत थे, गोणालक भी उनका अनुसरण कर रहा था । उसने वहाँ एक तपस्वी के प्रति दुर्विनीत व्यवहार किया और कुपित होकर उसने गोणालक पर तेजोलेश्या का प्रहार कर दिया । प्राणों के भय से वह भगवान् से रक्षा की प्रार्थना करने लगा । करुणा की प्रतिमूर्ति भगवान् ने शीतलेश्या के प्रभाव से उग तेजोलेश्या को शान्त कर दिया । अत्र तो गोणालक तेजोलेश्या की विधि बताने के लिये भगवान् से बारम्बार अनुनय विनय करने लगा और भगवान् ने उग पर कृपा कर दी । संहार साधन पाकर उसने भगवान् का आश्रय त्याग दिया और तेजोलेश्या की साधना में लग गया । कालान्तर में उसने तेजोलेश्या का प्रयोग भगवान् पर ही किया किन्तु अंततः वह ही समाप्त हुआ । १

कटपूतना का उपद्रव

भगवान् महावीर ग्रामक-सन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के रमणीय उद्यान में पधारें । माघ मास का सप्तसनाता समीर प्रवहमान था । साधारण मनुष्य घरों में वस्त्र ओढ़कर भी कांप रहे थे, किन्तु उस ठण्डी रात में भी भगवान् वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे । उस समय कटपूतना नामक व्यन्तरी देवी वहाँ आई । भगवान् को व्यानावस्था में देखकर उसका पूर्व वैर उद्वुद्ध हो गया । वह परिव्राजिका का रूप बनाकर मेघधारा की तरह जटाओं से भीषण जल बरसाने लगी और भगवान् के कोमल स्कंधों पर खड़ी होकर तेज हवा करने लगी । बर्फ-सा शीतल जल और तेज पवन तलवार के प्रहार से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीत हो रहा था, तथापि भगवान् अपने उत्कट ध्यान से विचलित नहीं हुए ।

उस समय समभावों की उच्च श्रेणी पर चढ़ने से भगवान् को विशिष्ट श्रवधिज्ञान (लोकार्थि ज्ञान) की उपलब्धि हुई । परीपह सहन करने की अमित तितिक्षा एवं समता को देखकर कटपूतना चकित थी, विस्मित थी ।

(१) १. चौबीस तीर्थंकर : एक पद्य०, पृ० १५०

२. ऐति० काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २३६-२४३

३. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ३१८ से ३२६

४. दीमक उत्पन्न की जो शरीर को काटने लगी ।
५. विच्छेद्यों द्वारा डंक लगवाये ।
६. नेत्रले उत्पन्न किये जो भगवान् के मांसखण्ड को छिन्न भिन्न करने लगे ।
७. भीमकाय सर्प उत्पन्न कर प्रभु को उन सर्पों से कटवाया ।
८. चूहे उत्पन्न किये जो शरीर में काट काटकर ऊपर पेशाब कर जाते ।
- ९.-१०. हाथी और हथिनी प्रकट कर सूँडों से भगवान् के शरीर को उखा-
वाया और उनके दाँतों से प्रभु पर प्रहार करवाये ।
११. पिशाच बनकर भगवान् को उखाया घमकाया और बर्छी मारने लगा ।
१२. बान बनकर भगवान् के शरीर का नखों से विदारण किया ।
१३. तिल्लान और पिशला का रूप बनाकर कर्मणाविलाप करते दियाया ।
१४. भगवान् के पैरों के नीचे जाग जलाकर भोजन पकाने का प्रयास किया ।
१५. वाणवान का रूप बनाकर भगवान् के शरीर पर पक्षियों के पिंजर लटकाने
को लो से और नखों से प्रहार करने लगे ।
१६. शरीर का रस पीना कर कई बार प्रभु के शरीर को उखाया ।

वहाँ से भगवान् लज्जित होकर लौट आये। वहाँ उस दिन कोई मंदिर नहीं था। वहाँ सम्पूर्ण घरों में खीर पानी गँदी भी। भगवान् भिक्षा के लिये पधारते तो संगम ने सर्वत्र 'अनेकशा' १ कर दी। भगवान् ऐसे संकष्टकाल उपसर्ग समझकर लौट आये और ग्राम के बाहर घनान में लीन हो गये।

इस प्रकार लगातार दस मास तक अगणित कष्ट देखे पर भी जब संगम ने देखा कि महावीर अपनी मासना से विचलित नहीं हुए बल्कि वे पूर्ववत् ही विशुद्ध भाव से जीवमान का हित सोच रहे हैं तो परीक्षा करने का उसका धैर्य टूट गया, वह हताश हो गया। पराजित होकर वह भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ और बोला-- "भगवन् ! देवेन्द्र ने आपके विषय में जो प्रशंसा की है, वह सत्य है। प्रभो ! मेरे अपराध क्षमा करो। वारतव में आपकी प्रतिज्ञा सच्ची और आप उसके पारगाम्य हैं। अब आप भिक्षा के लिये जायें, किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं होगा।"

संगम की बात सुनकर भगवान् बोले-- "संगम ! मैं इच्छा से ही तप या भिक्षा ग्रहण करता हूँ। मुझे किसी के आश्वासन की अपेक्षा नहीं है।" दूसरे दिन छह मास की तपस्या पूर्णकर भगवान् उसी ग्राम में भिक्षार्थ पधारते और 'वस्सपालक' बुद्धिया के यहाँ परमान्न से पारणा किया। दान की महिमा से वहाँ पर पंच-दिव्य प्रकट हुए। यह भगवान् की दीर्घकालीन उपसर्ग सहित तपस्या थी। २

१. एषणा समिति के बोधों से सहित

२. (१) ऐति. काल के तीन तीर्थकर, पृ. २५२ से २५५

(२) भगवान् महावीर : एक अनु., पृ. ३३१ से ३४०

(३) आब. सू., पृ. ३११, ३१२, ३१३

२०० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

धारण लेकर आया है और पुनः वहीं भागा जा रहा है । कहीं यह वज्र भगवान् को कण्ट न दे । अतः वह शीघ्र ही वज्र लेने के लिये दौड़ा । चमरेन्द्र ने अपना मूक्ष्म रूप बनाया और भगवान् के चरणों में आकर छिप गया । वज्र महावीर के निकट तक पहुंचने से पूर्व ही इन्द्र द्वारा पकड़ लिया गया और चमरेन्द्र को भगवान् का धारणागत होने के कारण क्षमा कर दिया ।

अमुरराज मौषमं गभा में कभी जाते नहीं, किन्तु अनन्त काल के बाद वसिष्ठ महावीर की धारण लेकर गये जिसे जैन साहित्य में आद्यनयं माना गया है ।

ग्वाले द्वारा कानों में कील

तपश्चरण :

प्राचार्य भद्रबाहु के अनुसार श्रमण भगवान् महावीर का तपः कमं अन्य तेईस तीर्थंकरों की अपेक्षा अधिक उग्र और अधिक कठोर था । १ यद्यपि उनका साधनाकाल बहुत लम्बा नहीं था, पर उपसर्गों की शृंखला ज्वालामुखी की भोपण ज्वालामुखी की मांति एक के बाद एक उछालों मार मारकर संतप्त करती रही । उनके द्वारा आचरित तपः साधना की तालिका इस प्रकार है : २

छह मासिक तप-१	१८० दिन का
पाँच दिन कम छह मासिक तप-२	१७५ दिन का
चातुर्मासिक तप-६	१२० दिन का एक तप
तीन मासिक तप-२	६० दिन का एक तप
सार्धद्वि मासिक तप-२	७५ दिन का एक तप
द्विमासिक तप-६	६० दिन का एक तप
सार्ध मासिक तप-२	४५ दिन का एक तप
मासिक तप-१२	३० दिन का एक तप
पाक्षिक तप-७२	१५ दिन का एक तप
भद्रप्रतिमा-१२	२ दिन का एक तप
महाभद्र प्रतिमा-१	४ दिन का एक तप
सूर्यतोभद्र प्रतिमा-१	दश दिन का एक तप
सोलह दिन का तप-१	
अष्टम भवत तप-१२	३ दिन का एक तप
पष्ट भवत तप-२२६	दो दिन का एक तप

इसके अतिरिक्त दसम-भवत (चार दिन का उपवास) आदि अन्य तपश्चर्याएँ भी थीं । प्रभु की तपश्चर्या निरंजन होती थीं और उसमें ध्यान योग की विशिष्ट प्रक्रियाएँ भी चलती रहती थीं । ३

१. आश्र. निर्घण्ट, २६२
२. तीर्थंकर महावीर, पृ. १२८
३. (१) तीर्थंकर महावीर, पृ. १२८
(२) आश्र. निर्घं. ४१६

२०६ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

७. एक सहस्रत्र तरंगी महासागर को अपनी भुजाओं से तैरकर पार करते हुए देखा ।
८. एक महान तेजस्वी सूर्य को देखा ।
९. मानुपेत्तर पर्वत को वेडूर्यमणिवर्ण वाली अपनी आंतीं से परिवेष्टित देखा ।
१०. महान मेरु पर्वत की चूलिका पर स्वयं को सिंहासनस्थ देखा

दस स्वप्नों का फल

१. निकट भविष्य में भगवान् महावीर मोहनीय कर्मों को समूल नष्ट करेंगे ।
२. शीघ्र ही भगवान् शुक्ल ध्यान के अंतिम चरण में पहुंचेंगे ।
३. भगवान् विविध ज्ञान रूप श्रुत की देशना करेंगे ।
४. भगवान् दो प्रकार के धर्म साधु-धर्म और श्रावक-धर्म का कथन करेंगे ।
५. भगवान् चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे ।
६. चार प्रकार के देव भगवान् की सेवा करेंगे ।
७. भगवान् संसार सागर को पार करेंगे ।
८. भगवान् केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ।
९. भगवान् की कीर्ति समस्त मनुष्य लोक में फैलेगी ।
१०. भगवान् सिंहासनारूढ़ होकर लोक में धर्मोपदेश करेंगे ।

केवलज्ञान की प्राप्ति

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन का अंतिम प्रहर था । उस समय भगवान् को छट्ठ भक्त की निजंला तपस्या चल रही थी । आत्म मंत्रन चरमसीमा पर पहुंच रहा था, क्षपक श्रेणी का आरोहण कर, शुक्ल ध्यान के द्वितीय चरण में सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का क्षय हुआ फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्नराय कर्मों का क्षय हुआ, द्म प्रकार द्म चार घाती कर्मों का क्षय किया और उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र के योग में केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट हुआ । भगवान् अब त्रिन और अग्रिहंत हो गये । सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये ।

१. स्थानांग सूत्र - मुनिश्री क०ना० कमल, पृ० ११०० से ११०३.

२०८ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

“उप्पन्ने इवा, विगमे इवा, धुवे इवा” इस प्रकार त्रिपदी का ज्ञान दिया। इसी त्रिपदी से इन्द्रभूति आदि विद्वानों ने द्वादशांग और दृष्टिवाद के अन्तर्गत चौदह पूर्व की रचना की और वे गणधर कहलाये।

महावीर की वीतरागमयी वाणी सुनकर एक ही दिन में इन्द्रभूति आदि चार हजार चार सौ शिष्य हुए। प्रथम पाँचों के पाँच पाँच सौ, छद्दे सातवें के साढ़े तीन तीन सौ और शेष अंतिम चार पंडितों के तीन तीन सौ छात्र थे। इस प्रकार कुल मिलाकर चार हजार चार सौ हुए। भगवान् के धर्म संघ में राजकुमारी चंदनवाला प्रथम साध्वी बनी। शंख, शतक आदि ने श्रावक धर्म और सुलसा आदि ने श्राविका धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार मध्यम पावापुरी का वह ‘महासेनवन’ और वंशाख दाकला एकादशी का दिन धन्य हो गया जब भगवान् महावीर ने श्रुतधर्म और चारित्र-धर्म की शिक्षा देकर साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की और स्वयं भाव तीर्थंकर कहलाये। ११

धर्म संघ :

साधना की दृष्टि से भगवान् महावीर के धर्म संघ में तीन प्रकार के साधक थे :-

१. प्रत्येक बुद्ध - जो प्रारम्भ से ही संघीय मर्यादा से मुक्त रहकर साधना करते रहते।
२. स्वविरकल्पी- जो संघीय मर्यादा एवं अनुशासन में रहकर साधना करते।
३. जिनकल्पी - जो विशिष्ट साधना पद्धति अपनाकर संघीय मर्यादा से मुक्त होकर तपश्चरण आदि करते।

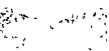
१. ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २६३ से २६६

२. अट्ठप० महा० ख० पृ० २६६ से ३०३

३. महावीर चरित्र, (नेमिचन्द्र रचित) १५६४

४. ममत्रायण, पृ० ५७

५. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ३७६ से ४१२



भगवान् महावीर ने गणतंत्रीय पद्धति पर विशाल धर्म संघ की स्थापना करके उस युग में एक विस्मयजनक उदाहरण प्रस्तुत किया था। लोगों की श्रामधारणा थी कि जैसे सिंह वन में अकेला स्वेच्छ्यापूर्वक घूमा करता है, वैसे ही साधकों का संघ नहीं होता। वैदिक परम्परा के हजारों तापस संन्यासी उस समय विद्यमान थे किन्तु किसी ने संघ की विधिवत् स्थापना की हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के भी अनेक श्रमण विविध समूहों में इधर उधर जनपदों में विचरते थे और उनका भी कोई एक व्यवस्थित संघ नहीं था। इस दृष्टि से भगवान् महावीर द्वारा धर्म संघ की स्थापना आम जनता की दृष्टि में एक अनोखी और नवीन घटना थी। उनकी विनय-प्रधान और आत्मानुशासन की आधारभूमि लोगों में और भी आश्चर्य उत्पन्न करती थी। उस धर्म संघ में जब स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्थान, सम्मान और ज्ञान का अधिकार मिला, तो संभारतः युग-चेतना में एक नई क्रांति मच गई होगी। आर्या चन्द्रगाला के नेतृत्व में जब अनेक राज-रानियाँ, राजकुमारियाँ और सद्गृहणियाँ दीक्षित होकर आत्मसाधना के कठोर मार्ग पर अग्रसर होने लगी तो चारों ओर मात्र ही एक नया वातावरण बना, नारी जाति में ही नहीं, किन्तु पुरुष वर्ग में भी भगवान् महावीर के इस समता-मूलक शासन की ओर आकर्षण बढ़ा, आत्मसाधन की भावना प्रसर होने लगी और वे इस और विचिन्तित शाने लगे।

धर्म संघ की स्थापना कर भगवान् महावीर ने सर्वप्रथम राजमूढ की ओर प्रस्थान किया। ११

धर्म प्रचार :

स्वच्छ संतों का अध्ययन किया एवं विचित्र प्रकार के तप, व्रतों में तपों तक संयम की साधना कर मुक्ति प्राप्त की । १

भगवान् महावीर के जामाता राजकुमार जामाणिक और पुत्री प्रियदर्शना ने भी भगवान के चरणों में क्रमशः ५०० क्षत्रिय कुमारों तथा एक हजार स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहण की । २ यह भगवान की केवलीचर्या का दूसरा वर्ण था ।

मृगावती की प्रव्रज्या :

यह घटना भगवान् के केवलीचर्या काल के आठवें वर्ष की है । वर्षाकाल के पश्चात् कुछ दिनों तक राजगृह में विराजकर भगवान् 'आनंगिया' नगरी में ऋषि भद्र पुत्र श्रावक के उत्कृष्ट व जघन्य देवायुष्य सम्बन्धी विचारों का सम-र्थन करते हुए कौशाम्बी पधारे और मृगावती को संकटमुक्त किया । क्योंकि मृगावती के रूप लावण्य पर मुरघ हो चण्डप्रद्योत उसे अपनी रानी बनाने के लिये कौशाम्बी के चारों ओर घेरा डाले हुए था । उदायन की लज्जुवय होने से उस समय चण्डप्रद्योत को भुलावे में डालकर रानी मृगावती ही राज्य का संचालन कर रही थी । भगवान् के पधारने की बात सुनकर वह वन्दन करने गई और स्वाग-विरागपूर्ण उपदेश सुनकर प्रव्रज्या लेने को उत्सुक हुई और बोली—“भगवत् ! चण्डप्रद्योत की आज्ञा लेकर मैं श्रीचरणों में प्रव्रज्या सेना चाहती हूँ ।” उसने वहीं पर चण्डप्रद्योत से जाकर अनुमति के लिये कहा । चण्डप्रद्योत भी सभा में लज्जावश मना नहीं कर सका और उसने अनुमति प्रदान कर सत्कारपूर्वक मृगा-वती को भगवान् की सेवा में प्रव्रज्या प्रदान करवा दी । भगवत् कृपा से मृगा-वती पर आया हुआ शील संकट सदा के लिये टल गया । ३

केवलीचर्या का तेरहवां वर्ष :

वर्षाकाल की समाप्ति के पश्चात् भगवान् चम्पा पधारे और वहाँ के 'पूर्ण-भद्र' उद्यान में विराजमान हुए । चम्पा में उस समय 'कीणिक' का राज्य था ।

(१) १. ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २६६

२. भगवतीशतक, ६।३३।३८०, ६।६।३८२

(२) १. भगवती शतक, ६।३३।३८४, ६।३।६

२. त्रिषष्टि, १०।८।३६

(३) (i) ऐति. काल के तीन तीर्थं०; पृ० २७६, (ii) आश. सू., पृ. १ पृ. ६१

सत्य द्वारा आयुर्वि की प्राप्ति :

जब भगवान् महावीर के परिवर्तन का समय निकट आया तो शकेन्द्र का भयानक कर्मकाण्ड हुआ। यह देव-परिवार मलिन नहीं उपस्थित हुआ। अपने भगवान् महावीर को मरानिन्दा करने हुए कहा—“भगवान् ! आपके गर्भ, जन्म, पोषण और केवलज्ञान में हर्मोत्पत्ति प्रभाव था। इस समय तुममें भद्रमग्रह संक्रांत होने वाला है। यह ग्रह आपके जन्म नक्षत्र में आकर दो हजार वर्षों तक आपके जिन शासन के प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास में अत्यधिक बाधक होगा। दो हजार वर्षों के बाद जब यह आपके जन्म नक्षत्र से अलग होगा, तब श्रमणों का, निग्रन्थों का उत्तरोत्तर पुनः विकास होगा। उनका सत्कार और सम्मान होगा। एतदर्थ जब तक यह आपके जन्म नक्षत्र में संक्रमण कर रहा है, तब तक आप अपना प्रागुक्त बल स्थिर रखें, आपके प्रबल प्रभाव से यह सर्वथा निष्फल हो जायगा।”

भगवान् ने कहा—“शक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होगा। दुःप्रमा काल के प्रभाव से जिन शासन में जो बाधा होती है। वह तो होगी ही।”²

धर्म-परिवार :

गणधर एवं गण	—	११ गणधर एवं ६ गण
केवली	—	७००
मनःपर्यवज्ञानी	—	५००
अवधिज्ञानी	—	१३००

१. (१) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर पृ. ३०४

(२) त्रिपट्टि; १०।१०.

२. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ५६७-६८

गौतम को केवलज्ञान :

भगवान् महावीर ने परिनिर्वाण के पूर्व ही अपने मगध शिष्य गौतम को देव समीं वासना को परित्योग देने के लिये दूर स्थान पर भेज दिया। इसका कारण यह था कि निर्वाण के समय वह शिष्य स्वच्छाकुल न हो। देव-कर्मा को परित्योग देकर इन्द्रभूति गौतमा चाहते थे किन्तु रात्रि होने से लौट नहीं सके। जब गौतम को भगवान् के परिनिर्वाण के समाचार प्राप्त हुए तब उनके श्रद्धा स्तम्भ हरण पर तन्नाशान-मा प्रहार लगा। उनके हृदय के तार झनझना उठे—“भगवान् ! आप सर्वज्ञ थे फिर यह क्या किया ? अपने अंतिम समय में मुझे अपने से दूर क्यों किया ? क्या मैं वापस की भाँति आँचल पकड़कर आपको रोकता ? क्या मेरा स्नेह सत्त्वा नहीं था ? क्या मैं आपके साथ ही जाता तो यही का स्थान रोकता ? अब मैं किसके चरणों में नमस्कार करूँगा और अपने मन की संकाओं का सही समाधान करूँगा ? अब मुझे कौन गौतम ! गौतम कहकर पुकारेगा।”

भाव विह्वलता में बहते बहते गौतम ने अपने आपको संभाला, चित्त बदला, यह मेरा कैसा मोह है ? भगवान् तो यांतराग हैं, उनमें कहां स्नेह है, यह मेरा एक पक्षीय मोह है, मैं स्वयं उस पथ का पथिक क्यों न बनूँ ? इस प्रकार चित्तन करते हुए उसी रात्रि के अन्त में स्थित प्रज्ञ हो गौतम ने क्षणमात्र में मोह को क्षीण किया, केवलज्ञान के दिव्य आलोक से अन्तरलोक आभासित हो उठा । २

दीपोत्सव :

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात्रि को नौ मल्लकी,

१. (१) भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ५६८-६६

(२) ऐति० काल के तीन तीर्थंकर, पृ० ३३४ से ३३६

२. भगवान् महावीर - एक अनु०, पृ० ५६६-६००

३८	५३२	गान्ध्या
३९	५३१	मिथिला
४०	५३०	मिथिला
४१	५२९	राजगृह
४२	५२८	अपापापुरी (पावा)

४ वास्तव में भगवान् महावीर का निर्वाणकाल ईस्वी पूर्व ५२८, नवम्बर तदनुसार विक्रम पूर्व ४७१ तथा शक पूर्व ६७५ वर्ष ५ मास में हुआ । किन्तु चूंकि नवम्बर, वर्ष का ११ वां महीना था, अतः सन् ५२८ ई० पू० पूर्ण ही रहा था, अतः गणना में गुविधा की दृष्टि से महावीर का निर्वाण काल ई० पू० ५२७ तथा वि० पू० ४७० मान लिया गया है । देखें-वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना (मुनि कल्याण विजयजी) तथा आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन (मुनि नगराजजी) पृ० ६५, ११

विशेष :

जैनधर्म में दश आश्चर्य माने गये हैं । इन दश आश्चर्यों में से आधे अर्थात् पांच आश्चर्य भगवान् महावीर के समय घटित हुए । यह भी अपने आप में एक आश्चर्य ही है । भगवान् महावीर के समय जो पांच आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित हुईं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

१. गर्भहरण :

तीर्थंकर का गर्भहरण नहीं होता पर श्रमण भगवान् महावीर का हुआ । इस विषय में पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है ।

२. चमर का उत्पात :

पूरण तापम का जीव अगुरुन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । इन्द्र बनने के बाद उसने अपने ऊपर शकेन्द्र को मिह्रासन पर दिव्य भोगों का उपभोग करते देखा और उसके मन में विचार हुआ कि इसकी शोभा को नष्ट करना चाहिये । भगवान् महावीर की शरण लेकर उसने सौधर्म देवलोक में उत्पात मचाया इस

५ सुधर्मा :

इनके पिता का नाम धम्मिल्ल और माता का नाम महिला था। ये कोल्लाससन्निवेश के वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। जन्मान्तर विपयक अपनी शंका का समाधान पाकर इन्होंने भगवान् महावीर के पास अपने पांच सौ शिष्यों सहित दीक्षा ग्रहण की। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् संघ व्यवस्था का नेतृत्व आपके पास रहा। भगवान् महावीर के निर्वाण के बीस वर्ष पर्यन्त तक ये संघ की सेवा करते रहे। बयालीस वर्ष तक छद्मस्यावस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया और आठ वर्ष तक केवलीचर्या में रहकर धर्म प्रचार किया। आपने पचास वर्ष गृहस्थावस्था में व्यतीत किये थे। इस प्रकार कुल एक सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर राजगृह के गुणशील चैत्य में एक मास के अनशन से निर्वाण प्राप्त किया।

६ मंडित :

इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम विजयादेवी था। ये मौर्य सन्निवेश के वसिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। इन्होंने ५३ वर्ष की आयु में अपने तीन सौ पचास शिष्यों के साथ भगवान् महावीर की सेवा में भ्रातृमा का सांभारित्व समझकर दीक्षा स्वीकार की। चौदह वर्ष तक छद्मस्यावस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया। सोलह वर्ष तक केवलीचर्या में विचरण कर तिरासी वर्ष की आयु में गुणशील चैत्य में अनशनपूर्वक निर्वाण को प्राप्त हुए।

७ मौर्यपुत्र :

इनके पिता का नाम मौर्य और माता का नाम विजयादेवी था। ये काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे और मौर्य सन्निवेश के निवासी थे। देवलोका मन्त्रन्धी शंका का समाधान होने से इन्होंने अपने तीन सौ पचास शिष्यों के साथ पैंसठ वर्ष की आयु में भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। चौदह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया। १९ वर्ष केवलीचर्या में रहकर भगवान् महावीर के मगध ही ६५ वर्ष की आयु में अनशनपूर्वक गुणशील चैत्य में मुक्ति प्राप्त की।

सौलह वर्ष की आयु में अपने जैन गौ पिता के साथ भगवान् महावीर के पास दीक्षा प्राप्त की। सात वर्ष उपवासवाक्या में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया और सौलह वर्ष तक केवलजीवर्ग में निवृत्तरत्न प्राणीय वर्ग की आयु में भगवान् महावीर के समक्ष ही राजगृह के गुणशील चैत्य में एक मास के उपवास में निर्वाण को प्राप्त हुए। समस्त कम आयु में दीक्षित होकर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले आप ही एक मात्र गणधर हैं।

विशेष :

भगवान् महावीर के सभी गणधर ज्ञान के ब्राह्मण और प्रकाण्ड विद्वान् थे। सभी का निर्वाण राजगृह के गुणशील चैत्य में हुआ।

आम तौर पर एक भ्रम यह है कि छठे गणधर मंडित और सातवें गणधर मौर्यपुत्र सहोदर थे। यह भ्रम दोनों की माता के एक ही नाम को लेकर उत्पन्न हुआ है। वास्तविकता यह है कि ये दोनों सहोदर नहीं थे। दोनों की माता का एक ही नाम होना मात्र संयोग है। दोनों के पिता के नाम तो भिन्न भिन्न हैं। विजया नामक दो भिन्न महिनाएँ थीं।

सती-परिचय :

जैन धर्म में प्रमुख रूप से सोलह सतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सोलह सतियों के अतिरिक्त और भी सतियां हुई हैं जिनका भी अपना विशेष स्थान है। यहां भगवान् महावीरकालीन प्रमुख सतियों का संक्षेप में परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

१ महासती प्रभावती :

वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक की सात पुत्रियों में से एक थी और इनकी गणना सोलह सतियों में की जाती है। प्रभावती का विवाह सिधु-सौवीर के प्रतापी राजा उदायन के साथ हुआ था। प्रभावती की भगवान् महावीर के प्रति अटल आस्था थी।

भगवान् महावीर के प्रवचन पीयूष का पान करने के उपरांत प्रभावती का विचार दीक्षा ग्रहण करने का हुआ। यद्यपि वैराग्यभाव बाल्यकाल से ही थे किन्तु भगवान् के प्रवचन से ये भाव और पुष्ट हुए। वैराग्य भावना के प्रभाव के कारण प्रभावती का मन सांसारिक भोगों के प्रति आसक्त नहीं रहा। इसी

कालांतर में पद्मावती ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसे श्मशान के निकट के वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। यही बालक श्मशान रक्षक चांडाल के हाथों पड़ा और उसी के यहां पला-पोसा भी। चांडाल उसे दिनभर हाथ से शरीर खुजलाते देखता था इस कारण प्रेम से उसे 'करकंडू' नाम से पुकारने लगा। बस उसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

यही करकंडू बाद में कंचनपुर नामक राज्य का राजा बना और किसी प्रसंग को लेकर महाराज दधिवाहन ने कंचनपुर पर आक्रमण कर दिया। इधर करकंडू भी युद्ध के लिये तैयार हो मैदान में आ गया।

जब इस युद्ध का समाचार साध्वी पद्मावती को मिला तो उसने इस भयंकर घटना को टालने के लिये पिता-पुत्र के बीच रहस्य के पर्दे का अनावरण कर एक भयंकर घटना को टाल दिया। पिता-पुत्र गले मिल गये। करकंडू अपने वास्तविक माता पिता के दर्शन कर स्वयं को कृत-कृत्य मान रहा था।

पद्मावती अपना कर्त्तव्यपूर्ण कर अपने धर्मस्थान को लौट आई। उसकी प्रेरणा से न केवल संकट टला बरन् दोनों देशों के बीच स्नेह एवं शांति की रस-धारा प्रवाहित हो चली। स्नेह एवं शांति की सूत्रधार महासती पद्मावती की जय जयकार की ध्वनि चारों ओर गूंज उठी।

३ महासती मृगावती :

मृगावती महाराज चेटक की तृतीय पुत्री थी। मृगावती की गणना भी सोलह सतियों में की जाती है। मृगावती कौशाम्बी के राजा शतानीक की रानी थी।

रानी मृगावती के चित्र को देखकर अवंती नरेश चण्डप्रद्योत ने शतानीक के पास अपने दूत को भेजकर मृगावती की मांग की। शतानीक ने चण्डप्रद्योत की मांग अस्वीकार कर दी तो उसने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। शतानीक इस आक्रामिक आक्रमण से इतना भयभीत हो गया कि उसकी हृदयगति बंद हो गई। इस विपत्ति काल में मनी नारी मृगावती ने धैर्य से काम लिया। अन्तर्वरम्भ पुत्र उदयन का संरक्षण, राज्य की रक्षा आदि का भार अब उस पर था। इनसे बढ़कर अपने हीन धर्म को भी गुरदित रखना था। मृगावती ने चण्डप्रद्योत के पास समाचार भेजा कि अभी कौशाम्बी शोकग्रस्त है। अनुकूल

महत्ता चार मनवाली तर्कों का शय कर लाना । अर्थात् उन्हें भी कैलासजान की उपनिधि हो गई ।

जब लोगों ने सुना कि एक ही राति में दो दो मदागणियों को कैलासजान की उपनिधि हुई है तो लोग उनके दर्शनार्थ उद्यत पड़े ।

४ महासती चन्दनवाला :

महासती चन्दनवाना का परिचय पूर्व पृष्ठों में भगवान् महावीर के घोर अभिग्रह के अन्तर्गत दिया जा चुका है । चन्दनवाना अपरनाम नगुमति की करुण कथा वर्तमान युग में भी अनेक महदय कविगणों और कथाकारों की लेखनी का प्रिय विषय बनी हुई है । इस महासती के माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हैं किन्तु नाम, जीवन की घटनाओं एवं प्रेरक पुण्य-चरित्र के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं । उस चन्दन रस जैसी कोमल किन्तु कण्ठ जैसी कठोर, अतीव सुन्दरी कोमलांगी तथापि वीरवाला का कौमार्यकाल में आततायियों द्वारा अपहरण हुआ । अनेक ममन्धिक कण्ठों के बीच में गुजरते हुए अन्ततः अनाम, अजाति, अज्ञात-गुला क्रीतदासी के रूप में भरे बाजार उसका विक्रय हुआ । क्रय करने वाले कौशाम्बी के सेठ धनदत्त के स्नेह और कृपा का भाजन बनी तो सेठ पत्नी मूला के डाह और अमानुषिक अत्याचारों की शिकार हुई । अंत में जब वह मुंडे सिर, जीर्ण-शीर्ण श्रल्पवस्त्रों में, लोह शृंगलाओं से बंधी, कई दिन कि भूखी-प्यासी, एक सूप में अर्ध-उबले उड़द के कुछ वाकले लिये, जीवन के कटु सत्यों की जुगाली करती हवेली के द्वार पर खड़ी थी कि भगवान् महावीर के अतिदुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गये । दुस्साध्य अभिग्रह लेकर वह महातपस्वी साधु लगभग छह माह से निराहार विचर रहा था । अपने अभिग्रह की पूति उस वाला की उपर्युक्त वस्तुस्थिति में होती दिखाई दी और महामुनि उसके सम्मुख आ खड़े हुए । चन्दना की दशा अनिर्वचनीय थीं, महादरिद्री अनायास चितामणि रत्न पा गया, भक्त को भगवान्, मिल गये, वह धन्य हो गई । हर्ष-विषाद मिश्रित अद्भुत मुद्रा से उसने वह अति तुच्छ भोज्य प्रभु को समर्पित कर दिया, उनके सुदीर्घ अनशन व्रत का पारणा हुआ, दिव्य प्रगट हुए, जनसमूह इस अद्वितीय दृश्य को देखकर विस्मय-विभूत था । और चन्दना उसका तो उद्धार हो गया । साथ ही समाज का कोढ़ उस घृणित दास-दासी प्रथा का भी उच्छेद हो गया । गुणों के सामने जाति, कुल, अभिजात्य-आदि की महत्ता भी समाप्त हो गयी । चन्दना तो पहले से ही भगवान् की भक्त थी अब उनकी

करती किन्तु सुलसा की नीति परक धर्मप्रधान बातों से नाग संतुष्ट होकर धर्मध्यान में लग जाया करता था ।

जब सुलसा की कीर्ति-पताका देवसभा में भी फैलने लगी तो एक देव ने सुलसा की परीक्षा लेने का विचार किया ।

एक दिन सुलसा के घर एक मुनि भिक्षार्थ आये और कहा कि एक साधु बीमार है जिसके लिये लक्षपाक तैल की आवश्यकता है । सुलसा ने प्रसन्न मन से साधु के उपचारार्थ तैल देने के विचार से कमरे में जाकर तैल का घड़ा उठाया कि वह हाथ से छूट गया और बहुमूल्य तैल चारों ओर बिखर गया । उसने दूसरा घड़ा उठाया वह भी हाथ से छूट कर फूट गया फिर उसने तीसरा घड़ा उठाया, बाहर निकाला किन्तु बाहर लाते ही वह भी फूट गया । इतना होने पर भी सुलसा ने धैर्य नहीं छोड़ा । मुनि का मन उदास हो गया । सुलसा न उदास हुई और न ही क्रोधित । वह शान्त बनी रही तथा मुनि से निवेदन किया कि मुनिवर आज मेरे भाग्य में सुपात्र दान नहीं लिखा है मेरे कर्म बाधक बन रहे हैं । मुझे दुःख है कि मेरे पास औषधि होते हुए भी बीमार मुनि के काम न आ सकी । आपको भी व्यर्थ ही मैं कष्ट हुआ ।

मुनि ने देखा कि इतनी हानि होने पर भी सुलसा के मन में धैर्य और शांति है तब वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ । वह मुनि और कोई न होकर देवसभा का देव था जिसने सुलसा की परीक्षा लेने का विचार किया था । देव ने देवसभा में सुलसा की प्रशंसा वाली बातें बताते हुए उसके धैर्य, धर्मनिष्ठा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उसे वर मांगने को कहा । सुलसा ने अपने जीवन के अभाव की चर्चा करते हुए कहा कि संतान न होने से मेरे पति सदैव चिंतित रहते हैं । यदि मेरी यह कामना पूर्ण हो सके तो मुझे प्रसन्नता होगी । इस पर देव ने सुलसा को बत्तीस गोत्रियां प्रदान की जिनके प्रयोग से सुलसा को बत्तीस पुत्रों की प्राप्ति हुई । सुलसा के ये बत्तीस ही पुत्र राजा श्रेणिक के चक्रणा के अपहरण प्रसंग के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त हुए । सुलसा ने इस भयानक शोक में भी अपने आपको सम्माले रखा । यह सोचकर कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी । उमने धैर्यपूर्वक इस विरति को मद्भन किया ।

जैन धर्म में जिन सोलह महान् नारियों की गाथा है वह जैन इतिहास में सोलह सतियों के नाम में प्रसिद्ध है। प्रत्येक जैन इन सतियों के नाम स्मरण कर अपने आपको धन्य अनुभव करता है। सतियों के नाम स्मरणार्थ निम्न-लिखित श्लोक अत्यधिक प्रसिद्ध है।

ब्राह्मी, चंदनवालिका भगवती राजीमती द्रौपदी ।
 कौशल्या च मृगावती च गुलमा, सीता सुभद्रा शिवा ।
 कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यहो ।
 पद्मावत्यपि सुन्दरी दिन मुने कुर्वन्तु वो मंगलम् ।

तत्कालीन राज-पुरूष :

भगवान् महावीर के समकालीन अनेक राजा-महाराजाओं और उनके मंत्री आदि राजपुरूषों का साक्षात् रूप में भगवान् महावीर से सम्बन्ध था। यदि भगवान् महावीर के अनुयायी राजपुरूषों की सूची बनाई जावे और उस पर लिखा जावे तो यह भी एक अच्छे ग्रन्थ का रूप ले सकता है। यहां ऐसे ही कुछ सुप्रसिद्ध राजपुरूषों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है, जो भगवान् महावीर के अनुयायी थे।

१ : महाराजचेटक :

चेटक जैन परम्परा में दृढधर्मी उपासक माने गये हैं, वे भगवान् महा-
 प्रहासतियों का विवरण निम्नांकित पुस्तकों पर आधारित है।

- (१) जैन कथामाला, भाग २ व ३, श्री मधुकर मुनि
- (२) प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलायें

४ महाराजा उदायन :

भगवान् महावीर के परममहक उपासक नरेशों में सिंधु गोवीर देश के मत्तिकावती एवं तोरकिय महाराजासिंह उदायन का पर्याय उल्लेख स्थान है। उनके राज्य में मोरदा नरे नरे जनपद थे, ३९३ नगर तथा नानी ही मन्त्रि पदाधी की बड़ी नदी सराने थी। दश पुत्र-मुकुटभारी नरेश और अनेक छोटे भूपति, मामन्त्र, सरदार, सेठ साहूकार एवं मार्गनाह उनकी सेवा में रू रहते थे। राजधानी रोडक नगर अगर नाम वीतभय पत्तन एक निगाम, सुन्दर एवं वैभवपूर्ण महानगर तथा भारत के पश्चिमी तट का महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था। उसका नाम 'वीतभय' इसीनिगे प्रसिद्ध हुआ कि महाराज उदायन के उदार एवं न्याय-नीतिपूर्ण गुणासन में प्रजा सभी प्रकार के भय से मुक्त हो सुख और शांति का उपभोग करती थी। इतने प्रतापी और महान् नरेश होते हुए भी महा राज उदायन अत्यन्त निरभिमानी, विनम्रशील, साधु-सेवी और धर्मानुरागी थे। उनकी महारानी का परिचय पुर्य में दिया जा चुका है। कहा जाता है कि महारानी को उत्कट धर्मनिष्ठा से प्रभावित होकर ही महाराज ऐसे धर्म-निष्ठ बने थे। महारानी प्रभावती ने अपने राज्य में किसी स्वधर्मी को स्वानीय एवं उत्तरदेसीय भी जो अपने यहां किसी कार्यवश आया हुआ हो उसको किसी भी प्रकार की अमुविधा न हो ऐसी समुचित व्यवस्था कर रखी थी।

भगवान् महावीर के अपने नगर में पधारने पर राजा-रानी और पूरा परिवार तथा पार्षद एवं प्रजाजन भगवान् के समवमरण में पहुंचे और उपदेशा-मृत का पान किया जिसमें प्रभावित होकर श्रावक धर्म स्वीकार किया। साधुओं की सेवादि में उन्हें विशेष आनंद आता था। वे आदर्श भक्त थे। उन्होंने भी अन्त में दीक्षाव्रत अंगीकार कर लिया था।

५ महाराज श्रेणिक :

महाराज श्रेणिक का अपरनाम विम्बसार अथवा भम्भासार इतिहास प्रसिद्ध शिशुनागवंश के एक महान् यशस्वी और प्रतापी नरेश थे। वाहीक प्रदेश के निवासी होने के कारण उन्हें वाहीक कुल का भी कहा गया है।

भगवान् के शासन में श्रेणिक और उसके परिवार का धर्म-प्रभावना में जितना योग रहा उतना किसी अन्य राजा का नहीं रहा ।

६ मंत्रीश्वर अभयकुमार :

महाराज श्रेणिक के सुशासन, उत्तम राज्य व्यवस्था, स्पृहणीय न्याय शासन, समृद्धि, वैभव एवं राजनयिक संघर्ष का श्रेय अनेक ग्रंथों में उनके इतिहास-विश्रुत, वृद्धि विधान मंत्रीश्वर अभयकुमार को है । अभयकुमार द्रविड़देशीय ब्राह्मण पत्नी नन्दश्री से उत्पन्न उनके ही ज्येष्ठ पुत्र थे । एक अन्य मतानुसार अभय की माता नंदा या नंदशी दक्षिण देश के वैष्णवतट नामक नगर के धन-वह नामक श्रेष्ठि की पुत्री थी । कुछ भी हो अभयकुमार की ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का संदेह नहीं है ।

जैन इतिहास में अभयकुमार की भगवान् महावीर के परमभक्त, एक धर्मत्मा, शीलवान, संयमी श्रावक होने के अतिरिक्त एक अत्यन्त मेधावी, अद्भुत प्रत्युत्पन्न मति, न्याय शासन दक्ष, विचक्षण वृद्धि, कुटनीतिक, विशारद राजनीति पटु, प्रजावत्सल, अतिकुशल प्रशासक एवं आदर्श राज्य मंत्री के रूप में ख्याति है । जब जब भी राज्य पर कोई भी संकट आया, अभयकुमार ने अपने वृद्धि बल से अपने राज्य के धन जन और प्रतिष्ठा की तुरन्त और सफल रक्षा की । वे वेष बदलकर जनता के बीच जाते और विभिन्न मूखनाएं प्राप्त करते, पटयन्त्रों को विफल करते, जनता के संतोष-असंतोष का पता लगाते, न्यायिक जांच करते थे ।

इतने बड़े राज्य का शाक्ति सम्पन्न महामंत्री तथा महाराज का ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी राज्य विपत्ता उभे दूर भी नहीं गई थी । ये अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के थे । अभयकुमार ने दीक्षा की आशा अपने पिता राजा श्रेणिक से बुद्धिबल से प्राप्त कर भगवान् महावीर के पाग दीक्षा ग्रहण की और विजय अगुत्तर विमान में उत्पन्न हुए ।

महाराज श्रेणिक के अन्य पुत्रों में से कृष्णिक के अनिर्गुण मेघकुमार, नन्दिदेव और वारिदेव के चरित्र विशेष प्रसिद्ध हैं । सर्वत्रकार के देश-दुर्जन वैभव में पते, वे भी विषम भागों में मग्न थे कि भगवान् महावीर के उपदेशों

कृष्णिक की रानियों में पद्मावती, धारिणी और गुमद्रा प्रमुख थीं ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि उसने आठ राजकुमारियों से विवाह किया था, उदाई महारानी पद्मावती से उत्पन्न उसका पुत्र था, जो उसके बाद सिंहासन पर बैठा। इसी ने चम्पा से राजधानी पाटलीपुत्र स्थानान्तरित की थी।

चेलना के सत्संग ने, संस्कारों ने कृष्णिक के मन में भगवान् महावीर के प्रति अटूट भक्ति भर दी थी।

भगवान् महावीर के चम्पानगरी में आगमन की सूचना लाने वाले संवा-ददाता को वह एक लाख आठ हजार रजत मुद्राओं का प्रीतिदान दिया करता था।

कृष्णिक का वैशाली गणतंत्र के शक्तिशाली महाराजा चेटक के साथ भीषण युद्ध हुआ था। उस युद्ध के कारण हुए नरसंहार में एक करोड़, अस्सी लाख लोग मारे गये थे। इस युद्ध में महाशिला कंटक युद्ध और रथमूसल संग्राम अधिक प्रसिद्ध हैं। छलबल से कृष्णिक ने वैभवशाली वैशाली में अपनी सेना के साथ प्रवेश कर उसके वैभवशाली भवनों को भंग कर दिया। वैशाली भंग होने के समाचार को सुनकर महाराज चेटक ने अतश्नपूर्वक प्राण त्याग कर दिये और वे देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए।

भगवती मूत्र और निरयावलिका में दिये गये इस युद्ध के विवरणों से प्रमाणित हो जाता है कि युद्ध में आधुनिक युग के प्रक्षेपास्त्रों और टैंकों से भी अति भीषण संहारकारक महाशिलाकंटक और रथमूसल अस्त्र थे।

महाशिला कंटक अस्त्र और रथमूसल यन्त्र के कारण उस समय कृष्णिक की धाक चारों ओर जम गई थी। उसके समक्ष प्रतिरोध करने का साहस तत्कालीन नरेशों में से कोई भी नहीं कर सका। कृष्णिक अनेक देशों को अपने अधीन करता हुआ तिमिस्त्र गुफा के द्वार तक पहुँच गया। अष्टम भवन कर कृष्णिक ने तिमिस्त्र गुफा के द्वार पर दण्ड प्रहार किया। यहीं गुफा के द्वार-रक्षक देव ने क्रुद्ध होकर हुंकार की और कृष्णिक तत्काल वहीं भस्मगात् हो गया। मरकर वह छट्ठे नरक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् महावीर का भवन होने हुए भी वह तीव्र लोभ के उदय से पथभ्रष्ट

एक दिन भगवान् महावीर चम्पावनगरी पधारे । राजा एवं पलायन भगवान् की वंदना हेतु जाने लगे । कामदेव ने इस प्रकार जनता को जाने देना इसका कारण जानना चाहा तो उसे चिन्तित हुआ कि भगवान् महावीर पधारे हुए हैं । भगवान् के पादमन का समानार गुन हर जगत्का मन पुनर्कित हो उठा । यह भी भगवान् महावीर के समनसरण में जा पहुँचा ।

भगवान् के समनसरण में चारों ओर समता-रम की शारा गढ़ रही थी । भगवान् महावीर का श्याम एवं संगम मुक्त प्रनजन पीयूष का पान-कर कामदेव ने श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया ।

एक दिन कामदेव ने घर का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और उसकी अनुमति लेकर स्वयं निवृत्त हो पीपघणाला में चला गया । पीपघणाला में भगवान् को वन्दना कर विणेष समाधि और ध्यान योग में लीन हो गया । ध्यान की स्थिरता में जब चेतना लीन हो गई तो वह शरीर का भान भी भूल गया । कायोत्सर्ग दशा में स्थित हो आत्मरमण करने लगा । यहीं कामदेव की परीक्षा भी हुई जिसमें वह सफल हुआ ।

प्रातःकाल उसे शुभ समाचार मिला कि भगवान् महावीर चम्पा में पधारे हैं । कामदेव ने सर्वप्रथम भगवान् की सेवा में पहुँचकर उनकी वंदना की । भगवान् महावीर ने अपनी सभा में कामदेव को उपस्थित देखकर उसकी अविचल श्रद्धा की प्रशंसा की और राष्ट्र की घटना का वर्णन भी किया । साथ ही उन्होंने कहा कि गृहवास में रहने वाला श्रमणोपासक देव, मनुष्य और तिर्यन्च सम्बन्धी भयानक उपसर्गों में भी प्राणों की बाजी लगाकर अपनी धर्म-श्रद्धा में अविचल रहता है । इससे कामदेव की सभी प्रशंसा करने लगे ।

कामदेव श्रावक जीवन के अंतों में और भी प्रगतिशील बना और उसने क्रमशः श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की । अंतिम समय में शुद्ध

एक बार भगवान् महावीर कायावली पधारें। मुग़लोंने रोहतास जेल में भगवान् के दर्शनार्थें गया। भगवान् की दिव्य तापी मुग़लर जमाने श्रावक धर्म स्वीकार किया। पत्नी की पेशवा भेजके भगवा ने भी श्रावक धर्म काय किया और धर्मासाधना में लग गया।

एक दिन उनने पर का मय भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और स्वयं पीपधमाला में आकर श्रावक धर्म की साधना मय साधनाय, स्याय, अति-क्रमण-पीपध एवं कार्यात्ममें में मगन मनोनि करने गया।

अपनी धर्म-साधना में मुग़लोंने मायावी देव द्वारा छला गया। मुग़लोंने को अपनी भूल पर बड़ा पदनाताप हुआ। अपनी भूल पर उसने परनाताप न आलोचना की। जीवन की अंतिम परिस्थियों में गहू पूर्ण निरेड भाव की साधना में रमण करने का प्रयास करता रहा। श्रावक प्रतिमाओं की आराधना करता हुआ अन्त में समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ और सीधमें कल्प में समृद्धिभावी देव बना।

५ श्रावक चुल्लशतक :

चुल्लशतक आलंबिका नगरी का निवासी था और अपार धन-वैभव का स्वामी था। उसकी पत्नी का नाम बहुला था। वह बड़ी धर्म प्रिय और आदर्श पतिव्रता थी।

एक बार भगवान् महावीर आलंबिका नगरी पधारें। नागरिकों के साथ चुल्लशतक भी भगवान् के दर्शन करने गया। भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर उसने श्रावक के वारह व्रत ग्रहण किये। उसकी पत्नी भी श्राविका बन गई।

कुछ वर्ष बाद चुल्लशतक ने सब भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और निवृत्ति लेकर एकांत में धर्म साधना में लीन हो गया। जैसा कि होता है—व्यक्ति जब पूर्ण निष्ठा के साथ यदि किसी शुभ कर्म में प्रवृत्त होता है तो उसमें बाधाये आती ही हैं। चुल्लशतक के साथ भी ऐसा ही हुआ। वह भी धन और पुत्रों की भार्या में फंसकर छला गया। इस पर उसे पर्यचाताप हुआ और अपनी कमजोरी को दूर करने का संकल्प कर पुनः धर्मासाधना में जुट गया। उसने

एक राजकुमार से प्रेम संबंधों में प्रवेश करती थी और अपने पति के दोषों का खंडन के कारण उसे बदला करने के लिए राजा अतिरिक्त जीवन का अधिकार भी प्रदान किया। यह साकार रूप से पत्नी को तब तक राज सुनाया भी यह भी मान्यता थी थी और भगवान् के दर्शन के लिए, देवता मूर्ती और फिर श्रावक के द्वारा धर्मों को प्रदान किया।

अपनी धर्म साधना में एक बार वह असफल रहा। फिर पत्नी अग्निगिरा की प्रेरणा से सोना हुआ धर्म प्राप्त किया। मन में पत्नी के प्रति रहे अनुशासन को दूर करने हुए मन को मुदुद किया। ग्राह्य प्रतिमाओं का आचरण करने हुए अंतिम समय में श्रद्धापूर्वक देव त्याग कर वह गौधर्म-कल्प में देवता बना।

८ श्रावक महाशतक :

महाशतक राजगृह का निवासी था। यह समृद्ध और प्रतिष्ठित गाथापति था। उसके तेरह पत्नियाँ थी, जिनमें रेवती प्रमुख थी। महाशतक विचारणीय, धर्म प्रिय एवं दात प्रकृति का गुरुस्थ था। 'सादा जीवन उच्च विचार' में ही उसका विश्वास था।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह पधारे। महाशतक ने उनका धर्मोपदेश सुना और श्रावक के द्वादश व्रत स्वीकार किये। परिग्रह परिमाण करते समय रेवती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त अन्नह्यचर्य सेवन का त्याग किया। जीव-अजीव आदि तत्व का परिज्ञान कर वह संयम एवं श्रद्धापूर्वक जीवनयापन करने लगा।

स्वच्छन्द रूप से पति के साथ भोग की इच्छा से रेवती ने अपनी बारह सौतेली को समाप्त कर दिया। रेवती के दुष्ट स्वभाव का कारण — उसका मांस मदिरा सेवी होना था। मांस मदिरा के अधिक सेवन से उसकी प्रकृति और अधिक कामुक और क्रूर हो गई। एक बार राजा द्वारा प्राणी वध निषेध घोषित करने पर रेवती ने अपने ही गोकुल में से बढ़े मारकर खाने की व्यवस्था की। इससे बढ़कर उसकी मांस लोलुपता का उदाहरण और क्या हो सकता था

अंत में महाशतक को रेवती की दुष्टता का पता चल ही गया। उसे अपनी पत्नी से घृणा हो गई। उसने पत्नी को समझाने का प्रयास भी किया किन्तु

भाग १ : अंत में का संक्षिप्त इतिहास

चौध वर्ष तक उमने श्रावक धर्म का निर्दोष पालन किया। पन्द्रहवें वर्ष से उमने परमात्मा सब भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपा और पौष्यशाला में जाकर अंत-आराधना में लीन हो गया। यहीं उसके मन में श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का आचरण करने का सकल्य जागा। ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना से कुल ६६ माह लगते हैं। उमने यह कठोर तपश्चरण भी किया जिससे उसका धरोर अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो गया।

अंत में एक माह की संतुष्टिपूर्वक देह छोड़कर वह सौधर्मकल्य के अरुण-रत्न विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

१० श्रावक सालिहीपिता :

सालिहीपिता श्रावस्ती का निवासी था। वह बहुत ही श्रद्धा संपन्न और स्ववहारकुशल था। श्रावस्ती के ८ प्रमुख कोटिपतिवर्गों में उसकी गणना की जाती थी। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था। फाल्गुनी बड़ी धर्मशीला और पतिव्रता नारी थी।

एक बार भगवान् महावीर श्रावस्ती पधारे। नागरिकों के साथ सालिही-पिता भी उनके दर्शन करने गया। उपदेश सुनकर उसने बारह धर्मों को धारण किया। बाद में फाल्गुनी ने भी भगवान् की धर्मसभा में जाकर उपदेश सुना और धर्म-धर्म स्वीकार किया।

एक दिन उमने ज्येष्ठ पुत्र को सब भार सौंप कर वह पौष्यशाला में ध्यान और वहीं एकान्त में विविध प्रकार से ध्यान प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि करता रहा। उमने अनेक प्रकार की तपश्चर्याएँ भी कीं। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का आचरण किया। अंत में अनाधिपूर्वक देह त्यागकर सौधर्मकल्य के अरुण-रत्न विमान में देवता बना।

२५४ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

२१. चउपन्न महापुरिस चरियं - णीलांकाचार्यं
२२. चौवीस तीर्थंकर : एक पर्यवेक्षण - श्री राजेन्द्र मुनि
२३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
२४. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति - वृत्ति
२५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति - श्री अमोलक ऋषि
२६. जैनागम स्तोक संग्रह - श्री मगनलालजी म०
२७. जैन धर्म - मुनि श्री सुशीलकुमारजी म०
२८. जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग -: १ आ० श्री हृस्तीमलजी म०
२९. जैन कथा माला भाग २, ३, ५ श्री मधुकर मुनि
३०. जैन साहित्य संशोधक
३१. ठाणांग सूत्र
३२. तत्त्वायं सूत्र
३३. तिलोय पण्यत्ति
३४. तीर्थंकर चरित्र भाग १, २, ३, श्री रतनलाल टोपी
३५. तीर्थंकर महावीर - श्री मधुकर मुनि व अन्य
३६. त्रिपष्टि शलाका पुष्प चरित्र
३७. दशवैतालिक सूत्र - अगम्य चूर्णि
३८. दशवैतालिक निर्युक्ति
३९. निर्यावतिका
४०. पडस चरियं
४१. पार्व्वेताय चरित्र - मानदेव
४२. पार्व्वेताय चरित्रम् - हेमचन्द्रस्य
४३. प्रमुखा मुक्ति विम्व त्रैः पुष्प जीव महाशयम् - डॉ. जयानंदप्रसाद जैन
४४. अमरदी चरित्र
४५. अमरदी सूत्र

२५८ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

६.	श्रीमान् अमोलकचन्द्रजी सिधवी	मद्रास	सियाट
१०.	„ राजमलजी मरलेचा	मद्रास	सोजत रोड़
११.	„ कपूरचन्द्रजी भाई	मद्रास	सीराष्ट्र
१२.	„ सम्पतराजजी सिधवी	रायपुर	सियाट
१३.	„ फतेहचन्द्रजी कटारिया	बैंगलोर	देवलीकली
१४.	„ भंवरलालजी डूंगरवाल	मद्रास करमावास	[मालिया]
१५.	„ पारसमलजी सांखला	बैंगलोर	सांठिया
१६.	„ मोतीलालजी मूथा	बैंगलोर	रास
१७.	„ जुगराजजी वरमेचा	मद्रास	अटवड़ा
१८.	„ नथमलजी सिधवी	मद्रास	सियाट
१९.	„ केवलचन्द्रजी वापना	मद्रास	आगेवा
२०.	„ रिगवचन्द्रजी सिधवी	तिरुवेलोर	सियाट
२१.	„ मोहलालजी कोठारी	चिरंजीपुरम्	विरांटिया
२२.	„ भानीरामजी सिधवी	तिरुवेलोर	सियाट
२३.	„ चाँदमलजी कोठारी	बैंगलोर	रायपुर
२४.	„ घनराजजी बोहरा	बैंगलोर	ब्यागर
२५.	„ जंगलीमलजी भलगट	भंडारा	रीयां
२६.	„ भूमरमलजी भलगट	भंडारा	रीयां
२७.	„ हस्तीमलजी वर्गिगपोता	बैंगलोर	दासापा
२८.	„ रंगलालजी रीठा	पट्टाभिराम	कुशालपुरा
२९.	„ प्राणजीवन भाई	बम्बई	गौराष्ट्र
३०.	„ रमिकलाल भाई	बम्बई	गौराष्ट्र
३१.	„ दानिलाल भाई	बम्बई	गौराष्ट्र
३२.	„ रत्नजीकान्त भाई	बम्बई	गौराष्ट्र
३३.	„ ब्रजराजचन्द्रजी बोहरा	रत्नागिरी	रीयां
३४.	„ श्रीरामलालजी बोहरा	रायटंमनपेट	ब्यागर

२६० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

६१.	„ दुलीचन्दजी चौरडिया	मद्रास	नोधा
६२.	„ इन्द्रचन्द्रजी सिंघवी	मद्रास	सियाट
६३.	„ पारसमलजी वागचार	मद्रास	कुचेरा
६४.	„ जवाहरलालजी चौपड़ा	अमरावती	पीपाड़
६५.	„ शांतिलालजी गांधी	बम्बई	पीपाड़
६६.	„ देवीचन्दजी सिंघवी	मद्रास	सियाट
६७.	„ रतनलालजी बोहरा	केलशी	पीपाड़
६८.	„ पारसमलजी वोकड़िया	मद्रास	खांगटा
६९.	„ पूसालालजी कोठारी	खांगटा	खांगटा
७०.	„ अमरचन्द्रजी वोकड़िया	मद्रास	खांगटा
७१.	„ दीपचन्द्रजी वोकड़िया	मद्रास	खांगटा
७२.	„ केवलचन्द्रजी कोठारी	मद्रास	खांगटा
७३.	„ चैनमलजी सुराणा	मद्रास	कुचेरा
७४.	„ जुगराजजी कोठारी	मद्रास	खजवाणा

